॥ ओ३म् ॥

दयानन्दसन्देश

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट का मासिक पत्र

Date of Printing = 05-11-24
प्रकाशन दिनांक = 05-11-24

नवम्बर २०२४

वर्ष ५३ : अङ्क १
दयानन्दाब्द : २००
विक्रम-संवत् : कर्तिक-मार्गशीर्ष २०८१
सृष्टि-संवत् : १,९६,०८,५३,१२५

संस्थापक : स्व० ला० दीपचन्द आर्य
प्रकाशक व सम्पादक : धर्मपाल आर्य
व्यवस्थापक : विवेक गुप्ता

कार्यालय :

दयानन्दसन्देश (मासिक)
४२७, मन्दिर वाली गली, नया बांस,
खारी बावली, दिल्ली-६
दूरभाष : २३९८५५४५, ४३७८११९१
चलभाष : ९६५०५२२७७८
E-mail : aspt.india@gmail.com

कुल पृष्ठ २८
एक प्रति १५.०० रु०

वार्षिक शुल्क १५०) रुपये
पंचवर्षीय शुल्क ५००) रुपये
आजीवन शुल्क ११००) रुपये
विदेश में ५०००) रुपये

इस अंक में

- वेदोपदेश २
- क्या अंधविश्वास ले रहा है बच्चों की बलि ३
- केन्या : नैरोबी आर्यसमाज जो मैंने देखा... ५
- वेद ईश्वरीय ज्ञान है ८
- एक प्रश्न- द्रौपदी की रक्षा का १०
- मृतक श्राद्ध का विचार वैदिक सिद्धान्त.... १३
- पाप से मुक्ति पाने का वादा हर पन्थों..... १६
- महर्षि दयानन्द का एक महत्त्वपूर्ण काम.. १८
- सांख्य में सृष्टि रचना के तीन स्तर २०
- ईश्वर सर्वशक्तिमान् है ! २४
- श्रीकृष्ण की कितनी पत्नियाँ थी? २५

विशेष : दयानन्द सन्देश में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। उनसे सम्पादक की पूर्णतया सहमति आवश्यक नहीं है। अतः किसी भी चर्चा/परिचर्चा एवं वाद-विवाद के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी होंगे।

सत्यार्थप्रकाश

प्रचार संस्करण – ४००० रुपये सैकड़ा
स्पेशल (सजिल्द) – ६००० रुपये सैकड़ा में प्राप्त करें।

॥ ओ३म् ॥

वेद सब सत्यविद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है। —महर्षि दयानन्द

वेदोपदेश—ऋतस्य हि शुरुधः सन्ति पूर्वीर्ऋतस्य धीतिर्वृजिनानि हन्ति।
ऋतस्य श्लोको बधिरा ततर्द कर्णा बुधानः शुचमान आयोः॥

—ऋ० ४।२३।८

शब्दार्थ—**ऋतस्य**=ऋत की **हि**=सचमुच **शुरुधः**=शक्तियाँ **पूर्वीः**=पूर्ण तथा पूर्व से अर्थात् सनातन से **सन्ति**=हैं। **ऋतस्य**=ऋत का **धीतिः**=चिन्तन, विचार **वृजिनानि**=वर्जन करने योग्यों को, पापों को **हन्ति**=नष्ट कर देता है। **बुधानः**=समझाया जाता हुआ **शुचमानः**=समुज्ज्वल **ऋतस्य+श्लोकः**=ऋतकीर्तन, ऋतप्रचार **आयोः**=मनुष्य के **बधिरा**=बहिरे **कर्णा**=कानों को **ततर्द**=खोल देता है।

व्याख्या—सृष्टि-नियम बहुत बलवान् है। सृष्टि-नियम के अनुकूल चलकर मनुष्य सृष्टि के तत्त्वों पर अधिकार जमा लेता है, किन्तु विपरीत चलकर जीवन खो बैठता है। वाष्प और अग्नि के बल को जानकर उनके अनुकूल व्यवहार से मनुष्य ने रेलगाड़ी, हवाई जहाज बना डाले। विद्युत् की शब्दवाहकता का सामर्थ्य समझकर रेडियो बनाया गया। गले में स्वरयन्त्र के रहस्य को समझकर शब्द ग्राहक यन्त्र (ग्रामोफोन) बनाया गया।

आग की शक्ति है ताप और प्रकाश। कोई ऐसा विज्ञानधुरीण न निकला, जिसने आग के ये दो गुण नष्ट करके आग में अन्धकार तथा शैत्य उत्पन्न कर दिया हो। कान का धर्म है शब्द सुनना। कोई ऐसा बलवान् विज्ञानवान् न हुआ, जिसने कान से बोलने या चखने का कार्य लेने की युक्ति निकाली हो। आँख में चखने का सामर्थ्य कोई भी न ला सका। ऐसा क्यों? ये सब विधाता के ऋत-विधान का चमत्कार है। सचमुच ऋत की बड़ी शक्ति है और वह है भी नित्य। सृष्टि नियम के विरुद्ध आचरण करने से कष्ट होता है। दुःख=कष्ट पाप का फल होते हैं, अतः सृष्टि नियम का उल्लङ्घन पाप है। पाप से बचने का उपाय सृष्टि-नियम का उल्लङ्घन न करना है, इसके लिए सृष्टि-नियम का ज्ञान होना चाहिए। सृष्टि-नियम के ज्ञान का पुनः-पुनः अभ्यास मनुष्य को उसके विरोध से हटाता है, अर्थात् पाप से बचाता है, अतः वेद ने कहा—**ऋतस्य धीतिर्वृजिनानि हन्ति**=ऋत का चिन्तन पापों को मारता है। इस भाव को लेकर सन्धया में आने वाले **'ऋतं च सत्यं च.... .'** आदि तीन मन्त्रों को ऋषि लोग अघमर्षण पाप के मसलने वाला कहते हैं, क्योंकि उन तीन मन्त्रों में ऋत का वर्णन है। ऋषियों ने कहा भी है- 'जब-जब मन में पाप की भावना उठे, इन मन्त्रों का जप करना चाहिए।' जप केवल किसी शब्द या वाक्य के बार-बार दोहराने को नहीं कहते, वरन्—**'तज्जपस्तदर्थभावनम्'** (यो०द० १।२८)—जप का अर्थ, अर्थ-विचार है। इसीलिए जब यह

(शेष पृष्ठ ७ पर)

क्या अंधविश्वास ले रहा है बच्चों की बलि?

–धर्मपाल आर्य

हाथरस में जिस स्कूल की तरक्की के लिए क्लास-2 के बच्चे की हत्या की गई, उसका मालिक बी-टेक पास है। मलेशिया में नौकरी करता था। 4 साल पहले गांव लौटा। यहां स्कूल खोला, लेकिन आशा अनुरूप सफल नहीं हुआ, बल्कि कर्ज के जाल में फंसता चला गया। 20 लाख का कर्ज हो गया। जब कोई ऑप्शन नहीं दिखा, तो अपने तांत्रिक पिता की बातों में आ गया। फिर उसने बच्चे की बलि देने की साजिश रची।

दूसरे पूरे देशभर में बुधवार को पौराणिक जितिया व्रत मनाया गया। जितिया एक व्रत है जिसमें निर्जला (बिना पानी के) उपवास पूरे दिन किया जाता है और माताओं द्वारा अपने बच्चों की लंबी उम्र, कल्याण के लिए मनाया जाता है, लेकिन इस बार समूचे बिहार राज्य में 49 लोग डूब गए, जिनमें से 41 लोगों की मौत हो गई। उनमें अधिकांश छोटे बच्चे भी शामिल थे, यानी जिन बच्चों की लंबी आयु के लिए यह उपवास किया गया, वो ही डूब गए।

पिछले साल अंधविश्वास के चलते ही उत्तर प्रदेश के सुल्तानपुर में तांत्रिक के कहने पर एक मां ने अपने ही बेटे की दे डाली बलि। 4 माह के मासूम को फावड़े से काट डाला था। ऐसी यह वो घटनाएं हैं, जिन्होंने पूरे समाज को संकते में डाल दिया है।

इन घटनाओं ने एक बार फिर सवाल खड़े किए हैं। यह सवाल न हमसे है और न आपसे, यह सवाल है सनातन वैदिक धर्म से कि क्या यह सारा अंधविश्वास धर्म से जुड़ा है? अगर हम कहेंगे नहीं, तो सवाल होगा कि हो सब कुछ हिंदू धर्म के नाम पर ही रहा है? अगर आप इन प्रश्नों के उत्तर तलाश करेंगे, तो विद्वान मानते हैं कि वैदिक धर्म में समय के साथ विकृतियां आती गईं, लोक परंपराओं की धाराएं भी जुड़ती गईं और अज्ञानता में लिप्त समाज में उन्हें वैदिक धर्म का हिस्सा माना जाने लगा। जैसे वट वृक्ष से असंख्य लताएं लिपटकर अपना अस्तित्व बना लेती हैं, लेकिन वे लताएं वृक्ष नहीं होतीं, उसी तरह वैदिक आर्य धर्म की छत्रछाया में अन्य परंपराओं ने भी जड़ फैला लीं। बलि प्रथा का प्रचलन हिंदुओं के शाक्त और तांत्रिकों के संप्रदाय में ही देखने को मिलता है, लेकिन इसका कोई वैदिक आधार नहीं है। किंतु आज भी इनका इसी रूप में जीवित रहना इस बात के जरूर संकेत देता है कि अंधविश्वास की जड़ें अभी भी देश में बहुत गहराई तक समाई हैं।

बात यहीं तक सीमित नहीं है, थोड़े समय पहले हैदराबाद में एक शख्स ने एक बच्चे की बलि दे दी थी। शख्स ने एक तांत्रिक के कहने पर चंद्र ग्रहण के दिन पूजा की और बच्चे को छत से फेंक दिया। तांत्रिक ने उसे कहा था कि ऐसा करने से उसकी पत्नी की लंबे समय से चली आ रही बीमारी ठीक हो जाएगी। ऐसी न जाने कितनी घटनाएँ हर रोज सुनने को मिलती हैं।

यदि देखा जाए तो आज समाज में अंधविश्वास का बाजार इतना बढ़ चुका है कि जिसकी चपेट में पढ़े-लिखे भी उसी तरह आते दिख रहे हैं, जिस तरह अशिक्षित लोग। जबकि यह लंबे संघर्ष के बाद मानव सभ्यता द्वारा अर्जित किए गए आधुनिक विचारों और खुली सोच का गला घोंटने की कोशिश है।

ऐसी घटनाएं पहले पूरे विश्व में होती रही हैं, लेकिन समय के साथ उन्होंने आधुनिकता को अपना

लिया। पर भारत में धर्म के नाम पर यह सब कुछ पूर्व की भांति चल रहा है। क्योंकि मानव बलि के पीछै के तर्क सामान्य रूप से धार्मिक बलिदान जैसे ही हैं। मानव बलि का अभीष्ट उद्देश्य अच्छी किस्मत लाना और देवताओं को प्रसन्न करने की लालसा आदि में होता है। हमें नहीं पता कि रक्त से प्रसन्न होने वाले इन काल्पनिक देवताओं को देवता कहें या राक्षस? प्राचीन जापान में, किसी इमारत निर्माण की नींव में अथवा इसके निकट प्रार्थना के रूप में किसी कुंवारी स्त्री को जीवित ही दफन कर दिया जाता था, जिससे कि इमारत को किसी आपदा अथवा शत्रु-आक्रमण से सुरक्षित बनाया जा सके। दक्षिण अमेरिका में भी नरबलि का लंबा इतिहास रहा है। शासकों की मौत और त्योहारों पर लोग उनके सेवकों की बलि दिया करते थे। पश्चिमी अफ्रीका में उन्नीसवीं सदी के आखिर तक नरबलि दी जाती थी। चीन की महान दीवार के बारे में कहा जाता है कि उसे अनगिनत लाशों पर खड़ा किया गया था। लेकिन वह पौराणिक काल था, जिसमें मानव सभ्यता ज्ञान से दूर थी। हाँ, इसमें भारत का वैदिक कालखंड सम्मिलित नहीं होता, क्योंकि वेदों में ऐसे सैकड़ों मंत्र हैं, जिससे यह सिद्ध किया जा सकता है कि वैदिक धर्म में बलि प्रथा निषेध है और यह प्रथा हमारे धर्म का हिस्सा नहीं है। जो बलि प्रथा का समर्थन करता है, वह धर्मविरुद्ध दानवी आचरण करता है।

जब धर्म की सच्ची शिक्षा देने वाले ऋषि-मुनियों के अभाव में अज्ञान व अंधविश्वास, पाखंड एवं कुरीतियां तथा मिथ्या परंपराएं आरंभ हो गईं, उनके स्थान पर ढोंगी पाखंडियों के डेरे सजने लगे, तब इसका दुष्परिणाम देश की गुलामी था। इनके कारण देश को अनेक विषम परिस्थितियों से गुजरना पड़ा और आज भी देश की धार्मिक व सामाजिक स्थिति संतोषजनक नहीं है। इस स्थिति को दूर कर विजय पाने के लिए देश से अज्ञान व अंधविश्वासों का समूल नाश करना जरूरी है, वरना धार्मिक तबाही पिछली सदी से कई गुना बड़ी होगी।

यदि सरकार राष्ट्रीय स्तर पर कानून बनाकर अंधविश्वास फैलाने वाले तत्वों के खिलाफ, उनका प्रचार-प्रसार कर रहे लोगों के खिलाफ एक्शन लेने का प्रावधान बना दे, तो आज भी काफी कुछ समेटा जा सकता है। ये सच है कि कानून तो अमल के बाद ही समाज के लिए उपयोगी बन पाता है, किंतु फिर भी उम्मीद है कि 21वीं सदी के दूसरे दशक में पहुंच चुके हमारे समाज को ऐसे ऐतिहासिक कानून की आंच में विश्वास और अंधविश्वास के बीच अंतर समझने में कुछ तो मदद मिलेगी। हमारा अतीत भले ही कैसा रहा हो, पर आने वाली नस्लों का भविष्य तो सुधर ही जाएगा।

तर्कवादी कहते हैं कि यह दुख की बात है कि एक ऐसा देश, जहां विज्ञान इतना आगे बढ़ चुका है और अंतरिक्ष में सैटेलाइट तक भेजे जा रहे हैं, वहां इंसानों की बलि दी जाती है और बेमतलब के रीति-रिवाज माने जाते हैं। विश्वास और अंधविश्वास के बीच के अंतर यही है कि "अगर कोई रिवाज उसके पीछे के तर्क को लेकर सवाल उठाए बिना माना जाता है, तो उसे अंधविश्वास कहते हैं। अगर कोई व्यक्ति रिवाज के पीछे के तर्क को नहीं परख पाता, तो यह खतरनाक हो सकता है।" उन्हें लगता है कि हल्दी, मुर्गी, पत्थरों, संख्याओं और रंग जैसी चीजों को शक्तिशाली समझना अवैज्ञानिक है और इन्हें वैज्ञानिक कहे जाने के कारण कई जानें जाती हैं। जबकि अंधविश्वास आपको कर्महीन और भाग्यवादी बनाते हैं। हमारे समाज में कुछ ऐसी मान्यताएं प्रचलित हैं जिन्हें अंधविश्वास कहा जाता है। हालांकि कुछ लोगों के लिए यह आस्था का सवाल हो सकता है। हम यह जानते हैं, कि इन अंधविश्वासों के कारण भारत की अधिकांश जनता वहमपरस्त बनकर निर्णयहीन, डरी हुई और धर्मभीरू बनी हुई है। ❑❑

केन्या : नैरोबी आर्य समाज जो मैंने देखा वो अविस्मरणीय रहेगा

–विनय आर्य

अगर आप मन से चाहें तो दुनिया में कुछ भी असम्भव नहीं है, किसी का विश्वास ही उसके जीवन का आधार है। जीवन का यह मूलमंत्र हाल ही में अपनी आँखों से पूर्वी अफ्रीकी देश केन्या से देखकर लौटा हूँ। दरअसल, केन्या की राजधानी नैरोबी में महर्षि दयानंद जी के 200वें जन्मदिवस के कार्यक्रम की श्रृंखला के अवसर पर आर्य समाज नैरोबी का 121वां स्थापना दिवस एवं आर्य स्त्री समाज का 106वां स्थापना दिवस धूमधाम से मनाया गया। भारत से पांच हजार आठ सौ किलोमीटर दूर अफ्रीकी भूमि पर गूंजते वेद मंत्र बड़ी संख्या में आहुति डालते लोगों के बीच दैनिक यज्ञ में उपस्थित रहना गौरवान्वित पल रहा।

यह सब उस देश और भूमि पर हो रहा था जहाँ की आबादी का लगभग 85 प्रतिशत ईसाई मत तथा 10 प्रतिशत हिस्सा मुस्लिम मत का पालन करता है। उस देश में भी कह सकते हैं जहाँ मात्र हजारों की संख्या में भारतीय रहते हैं। वो भारतीय मूल के लोग जिनके पुरखों ने परिस्थितिवश भारत तो छोड़ा किन्तु अपना वैदिक धर्म और उससे जुड़ी परंपराएँ नहीं छोड़ीं। बल्कि गर्व के ओ३म ध्वज की पताका को अफीकी भूमि पर फहराए रखा।

भले ही यह आर्य समाज नैरोबी का 121वां स्थापना दिवस था, किन्तु वहां जाकर जब इतिहास को देखा, तो अहसास हुआ कि महर्षि दयानंद जी के भक्तों ने कितने कम साधनों में यहाँ आर्य समाज और वैदिक धर्म की नींव रखी। क्योंकि यहाँ जाने के बाद उस स्थान पर यज्ञ करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, जहाँ हमारे आर्य समाज के पूर्वजों ने अफ्रीकी भूमि पर पहला यज्ञ किया था। इसका इतिहास सुनकर मैं अचंभित रह गया, कारण इस स्थान का नाम है मैन ईटर्स, यानी इंसानों का खाने वाला। दरअसल, मार्च 1898 में किलिन्दिनी हार्बर पर युगांडा को हिंद महासागर से जोड़ने वाले रेलवे के निर्माण के हिस्से के रूप में, अंग्रेजों ने केन्या में त्सावो नदी पर एक रेलवे पुल का निर्माण शुरू किया। रेलवे पर काम करने के लिए 20,000 से ज़्यादा श्रमिक और इंजीनियर भारत से गए थे। लेकिन पुल निर्माण के दौरान एक-एक कर वे गायब होने लगे। निर्माण के अगले नौ महीनों के दौरान, शेर रात में श्रमिकों को उनके टेंट से खींच ले जाते और उन्हें खा जाते। कर्मचारियों ने शेरों को डराने की कोशिश की और नरभक्षियों को दूर रखने के लिए अपने शिविर के चारों ओर काँटेदार बाड़ बनाए, लेकिन कोई फायदा नहीं हुआ(शेर काँटेदार बाड़ों को लांघकर या रेंगकर शिविरों में घुस जाते और उन्हें खींचकर एक गुफा में ले जाकर खा जाते। जैसे-जैसे हमले बढ़ते गए, सैकड़ों कर्मचारी त्सावो से भाग गए, जिससे पुल पर निर्माण कार्य रुक गया। आखिरकार, लेफ्टिनेंट-कर्नल जॉन हेनरी पैटरसन ने मोर्चा संभाला और भारतीय लोगों की मदद से उन शेरों को मार गिराया।

शेरों द्वारा मारे गए लोगों की सही संख्या स्पष्ट नहीं है। पैटरसन ने कई आंकड़े दिए, जिसमें दावा किया कि कुल 135 लोग मारे गए। शेरों के मारे जाने के बाद अफ्रीकी ईसाइयों और यूरोपीय अधिकारियों ने जहाँ अपनी मौन प्रार्थना की और सो गए। वहां केन्या देश के इस भयानक जंगल में आर्य समाज से जुड़े हमारे महानुभावों, जिसमें लालचंद शर्मा, महाशय बद्रीनाथ आर्य, मथुरा दास

कपिला, इंदर सिंह केंट, बैसाखी राम भारद्वाज और फकीर चंद समेत अन्य महानुभावों की हवन करने की बड़ी इच्छा हुई। इसलिए, उन्होंने जमीन में एक चौकोर गड्ढा खोदकर हवन कुंड बनाया और उसमें जंगल से चुनकर सूखी समिधा भर दीं। रसोई के घी और सूखे जंगली फूलों की सामग्री लेकर पवित्र अग्नि के चारों ओर एकत्रित हुए और हवन किया।

126 साल पहले यह हवन पूर्वी अफ्रीका और पूरे अफ्रीका की धरती पर किया गया पहला हवन था और यही वह समय था जब केन्या में हमारे आर्य समाज के आंदोलन के बीज बोए गए थे - एक ऐसा क्षण जिसने एक आध्यात्मिक और सांस्कृतिक आंदोलन की नींव रखी जो एक सदी से भी अधिक समय से फल-फूल रहा है।

आज 126 साल बाद ठीक उसी स्थान पर यज्ञ करना मेरे लिए गर्व और गौरव का पल था, जिसे मैं शब्दों में चाहकर भी व्यक्त नहीं कर सकता। सोचिए, आज 126 साल बाद जब मैं उस गुफा के करीब पहुंचा, तो मन में धड़कन होने लगी। न जाने उस गुफा के अंदर कितने स्वामी दयानंद जी के शिष्यों ने अपने प्राणों को खोया होगा। 1901 में रेलवे के पूरा होने के बाद, हमारे आर्य समाज के पूर्वजों ने स्वामी दयानंद जी के विचारों का प्रचार शुरू किया और 5 जुलाई 1903 को आर्य समाज नैरोबी की स्थापना की गई। स्वामी जी के प्रति मन में आस्था तो देखिए कि स्थापना करने के लिए कोई भवन नहीं था, तो 5 जुलाई 1903 को नैरोबी में भारत से गए जय गोपाल जी के घर पर 45 लोगों ने भाग लिया। कारण यह था कि आर्य समाज नैरोबी के पास कोई भवन नहीं था। इसलिए, साप्ताहिक सत्संग और बैठकें सदस्यों के निवास पर ही आयोजित की जाती थीं। इसके बाद आवश्यकता महसूस हुई और आर्य समाज नैरोबी की स्थापना की या कहो, अफ्रीकी भूमि पर स्वामी दयानंद जी के संदेशों की नींव रखी। आर्य समाज के सदस्यों की बढ़ती संख्या के कारण जब सदस्यों के निवास पर बैठकें आयोजित करना कठिन हो गया, तो अंतरंग सभा की बैठक में आर्य समाज के लिए भवन निर्माण हेतु एक एकड़ भूमि खरीदने का निर्णय लिया गया।

5 जुलाई को विचार किया और 11 सितंबर 1903 को ही पूर्वी अफ्रीका में पहली आर्य समाज इमारत की नींव रखी गई। आज इस जगह पर सात मंजिला इमारत है जो वैदिक हाउस के नाम से जानी जाती है। केवल नैरोबी ही नहीं, इस शहर से 483 किलोमीटर दूर, इसके अगले साल 1904 में केन्या के दूसरे सबसे बड़े शहर मोम्बासा में आर्य समाज की स्थापना की गई। एक मंदिर बनाया, एक युवा शाखा की स्थापना की, साप्ताहिक हवन और सत्संग का आयोजन किया जाने लगा, साथ ही वहां एक नर्सरी और एक स्कूल बनाया गया और एक आर्यन क्लब स्थापित किया गया। साथ ही पूर्वी अफ्रीका की आर्य प्रतिनिधि सभा बनाकर वेद का संदेश देने का कार्य आरंभ किया। इनमें श्री इंदर सिंह केंट- अध्यक्ष, श्री किशन चंद उपाध्यक्ष, श्री बद्री नाथ जी आर्य सचिव, श्री अमर नाथ- सह सचिव, श्री जल गोपाल- कोषाध्यक्ष, श्री लक्ष्मण दास- पुस्तकालयाध्यक्ष, श्री मूल चंद- सदस्य, श्री मथुरा दास कपिला- सदस्य, श्री राम रतन- सदस्य बने।

पूर्वी अफ्रीका के आर्य बंधु उन दिनों उसी प्रकार बहुत उत्साही थे, जिस प्रकार उत्तर भारत के थे। प्रत्येक आर्य सदस्य वैदिक धर्म का प्रचारक था तथा आर्य समाज के लिए कुछ भी करने को तैयार था। लेकिन उनका मार्ग बाधाओं से मुक्त नहीं था। नैरोबी में मुसलमानों की संख्या पर्याप्त थी। उनका संगठन अंजुमन-ए-इस्लाम आर्य समाज की स्थापना को बर्दाश्त नहीं कर सका तथा उसके सदस्यों ने खुली बैठकों में आर्य समाज पर

आरोप लगाए। इससे विचलित हुए बिना श्री सालिग राम शर्मा तथा श्री बिहारी लाल ने उनके आरोपों का मुंहतोड़ जवाब दिया। परिणामस्वरूप अंजुमन-ए-इस्लाम अप्रभावी हो गया तथा आर्य समाज का ध्वज गर्व से फहरा उठा।

आज नैरोबी में एक सुन्दर स्थान पार्कलैंड में आर्य समाज नैरोबी का भवन है। इस भवन में नानजी भाई कालिदास मेहता जी की प्रतिमा स्थापित है। इसका इतिहास भी अपने आप में गर्व करने वाला है। दरअसल, नानजी भाई कालिदास नें आर्य समाज के लिए जो भी किया, वह अपने आप में एक अमूल्य योगदान और इतिहास है। इस कड़ी में देखा जाए, उनका केन्या के अंदर भी एक बहुत बड़ा योगदान रहा। क्योंकि जिस पार्कलैंड में आज आर्य समाज नैरोबी का विशाल भवन है, यह छह एकड़ भूमि श्री नानजी कालिदास मेहता जी के पास थी, जो उन्होंने आर्य समाज के लिए दान की थी। साथ ही, छह हजार केन्या की मुद्रा शिलिंग भी दान किए थे। बाद में, श्री नानजी भाई कालिदास मेहता ने दस हजार शिलिंग का दान कर तथा जनता से एकत्रित कुछ और धन से एक बड़ा हॉल बनवाया गया और लगभग तीन एकड़ भूमि पुनः खरीदी गई। पार्कलैंड आर्य हाईस्कूल स्वामी श्रद्धानंद जी के नाम से श्रद्धानंद आर्य नर्सरी स्कूल चलाया जा रहा है। नानजी भाई महर्षि दयानंद जी के कट्टर अनुयायी और वैदिक सिद्धांतों के समर्थक थे। वे जाति व्यवस्था में विश्वास नहीं करते थे। उन्होंने यह साबित कर दिया, जब उन्होंने आर्य कन्या के भूमि पूजन के लिए लोक व्यवहार में कही जाने वाली अछूत जाति की एक लड़की को आमंत्रित किया।

आर्य समाज मंदिर नैरोबी से कुछ दूरी पर साल 1949 में स्थापित आर्य कन्या स्कूल की स्थापना की गई तथा आर्य वैदिक एकेडमी स्कूल भी बनाया गया। आज भी इन सब स्कूलों में हजारों की संख्या में भारतीय और अफ्रीकी बच्चे शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। न केवल शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं बल्कि स्कूलों में बच्चे वहां की शिक्षा के साथ-साथ वैदिक शिक्षा भी ग्रहण कर रहे हैं।

निसंदेह आर्य समाज नैरोबी का यह 121वां स्थापना दिवस का कार्यक्रम सफलता के साथ पूर्ण हुआ, किंतु इतना कह सकता हूँ कि आरंभ में वहां जाकर आर्यजनों ने जो कष्ट झेले और जो समय पीड़ा में बिताया, वह उसे मिलने वाले महान गौरव को आज देखकर मन गर्व से भर उठा। अंत में आर्यसमाज नैरोबी के प्रधान डॉ० राजेन्द्र कुमार सैनी जी समेत आर्य समाज नैरोबी के सभी कार्यकर्ताओं को सफल कार्यक्रम के लिए हृदय से बधाई और शुभकामनाएं। निश्चित ही केन्या में आर्य समाज के कार्यक्रम में जो मैंने देखा, वह अविस्मरणीय रहेगा। ❑❑

(पृष्ठ २ का शेष)

वेदोपदेश

ऋततत्त्व = सृष्टि-नियम का रहस्य भले प्रकार समझाया जाए, तब बहिरे के कान भी खोल देता है, अर्थात् वह अपने अन्तरात्मा की ध्वनि सुनने लग जाता है। तभी ऋग्वेद के नवम मण्डल में कहा है–**'ऋतं वदन्नृतद्युम्न'** (ऋ० ९।११३।१०)–ऋतवादी ऋतु से चमक उठता है। उसका जीवन ऋतमय हो जाता है, क्योंकि–**'ऋतस्य दृढा धरुणानि सन्ति'** (ऋ० ४।२३।९)–ऋत की धारण-शक्तियाँ दृढ़ हैं। अतएव **'ऋतं येमान ऋतमिद वनोति'** (ऋ० ४।२३।१०)–ऋत के द्वारा संयम करने वाला ऋत को ही चाहता है, अतः ऋत-व्रती होना चाहिए। वेद में ऋत के विपरीत अनृत के त्यागने की कामना की गई है–**'इदमहमनृतात्सत्यमुपैमि'** (यजुः० १।५)–अनृत = ऋतविरुद्ध को त्यागकर मैं सत्य को प्राप्त करता हूँ। ऋत की महिमा जानकर कौन अनृत को पकड़ रक्खेगा ? ❑❑

वेद ईश्वरीय ज्ञान है

–पं० रामनिवास 'गुणग्राहक' सम्पर्क–(९०७९०३९०८८)

[गतांक से आगे] .....

श्री आर. सी. ट्रीनिच–'स्टडी ऑफ बर्डस' में लिखते हैं–

"ईश्वर ने मनुष्य को वाणी उसी प्रकार दी है, जिस प्रकार बुद्धि दी है। क्योंकि मनुष्य का विचार ही शब्द है, जो (वाणी द्वारा) बाहर प्रकाशित होता है।" ट्रीनिच कहना चाह रहे हैं कि परमात्मा ने मनुष्य को बुद्धि दी है, इसमें किसी को कभी कोई सन्देह नहीं रहा। तो बुद्धि प्रसूत विचारों को प्रकट करने वाली भाषा को लेकर सन्देह क्योंकर होगा? प्रो० पाट को स्पष्ट शब्दों में लिखना पड़ा–"किसी भी पिछली जाति ने एक भी धातु नया नहीं बनाया। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि वही शब्द बोले जा रहे हैं, जो सर्गारम्भ में मनुष्य के मुँह से निकले थे।"

ये तो योरोपीय विद्वानों के तर्कोत्पन्न सटीक से लगने वाले विचार हैं, निश्चयात्मकता का अभाव है, लेकिन भारतीय साहित्य-सरणी उस आदि काल से ही सतत् रूप से प्रवाहित रहने के कारण निश्चयात्मक स्वर में संसार की समस्त भाषाओं को दो भागों में बाँटती है। निरुक्त–१३.९ में किसी प्राचीन ब्राह्मण से उद्धृत वचन है–

तस्मात् ब्राह्मणा उभयी वाचं वदन्ति याच देवानां याच मनुषाणाम् ।

अर्थात ब्राह्मण दो प्रकार की वाणी बोलते हैं– या तो दैवीय या मानुषी । काठक संहिता–१४.५ में भी यही कहा है।

तस्मात् ब्राह्मणा उभे वाचौ वदति दैवीं च मानुषीं च ।

स्पष्ट है कि परमात्मा प्रदत्त वेद को देव वाणी तथा उससे इतर शेष सब भाषाएँ मानुषी के रूप में स्वीकृत हैं। शतपथ ब्राह्मण १.४.१३५ के अनुसार तो वेद मंत्रों को उच्चारण-सुविधा की दृष्टि से सन्धि-विच्छेद करके बोलना भी मनुषी भाषा माना जाता है। रामायण सुन्दर काण्ड–३०.१७ में आता है–

वाचं चोदाहरिष्यामि मानुषीमिह संस्कृताम्।

अर्थात् मैं यहाँ मानुषी वाणी संस्कृत को बोलूंगा । तैत्तरीय संहिता–६.४.७ में कहा है–

वाग् वै पराच्यव्याकृतवदत ।

अर्थात पराचीवाक् अव्याकृत है। भाव यह है कि मूलवाक् (दैव वाक) का व्याकरण आदि जब न रचा गया था । व्याकरण तो उस मूलवाक् (दैव वाक्) के अनुसार भाषाविज्ञ ऋषियों ने बनाया है। अब इन वचनों के आलोक में हम उन ग्रन्थों का परीक्षण करके देखें कि क्या भाषा की दृष्टि से उनको ईश्वरीय ज्ञान कहा जा सकता है? बाइबिल और कुरान की बात करें तो ये दोनों एक स्वर में मानते हैं कि कभी इस सम्पूर्ण पृथ्वी पर एक ही भाषा बोली जाती थी। निश्चित रूप से इनका आशय संस्कृत भाषा से ही होगा। हाँ सभ्यताभिमानी योरोपियन भारत को यह गौरव प्राप्त करते हुए नहीं देख सकते इसलिए उन्होंने अपने स्वभाव के अनुसार एक गप्प और हाँक दी कि संस्कृत से भी पहले एक भाषा और प्रचलित थी जो संस्कृत व योरोपियन भाषाओं की जननी थी, इसलिए उसे कल्पित नाम दिया 'थारोपियन'। सच में यह कल्पित भाषा योरोपियनों के लिए ऐसा भार बन गई है जो न तो उनसे उठाया जा रहा है और न गिराया ही जा रहा है। योरोप इसके नीचे

दबा हुआ सिसकता ही रहेगा।

दैव भाषा वह है जो देवों के देव परम देव परमेश्वर के द्वारा वेद के रूप में अपने अमृत पुत्र मानव को सृष्टि के प्रारम्भ में दी गई है। जो मानव के ज्ञान-विज्ञान व व्यवहार का आधार तो है मगर मानवीय हस्तक्षेप से सर्वथा अछूती है। मानव द्वारा व्याकरण में आबद्ध किये जाने पर अथवा उच्चारण से सुविधा की दृष्टि से सरल किये जाने पर वह भाषा दैव न रहकर मानुषी हो जाती है। क्या ऐसा कुरान और बाइबिल की भाषा के बारे में कहा जा सकता है? क्या इनकी भाषा को दैव भाषा कहने व सिद्ध करने का साहस ये लोग दिखाएंगे? अरे ! दैव भाषा तो क्या इनसे तर्क व प्रश्नोत्तर करने लगे तो इनके लिए अपने इन ग्रन्थों की भाषा को भाषा सिद्ध करना तारे तोड़कर लाने जैसा हो जाएगा। भाषा के मापदण्डों पर संस्कृत व हिन्दी को छोड़कर कोई भी तथाकथित भाषा खरी नहीं उतरती। ऐसे में इन ग्रन्थों को ईश्वरीय ज्ञान कहना कोरा दुराग्रह नहीं तो क्या है? इनके ग्रन्थों की भाषा कभी भूमण्डल के मानव मात्र की भाषा नहीं रही, तो क्या इनका तथाकथित ईश्वरीय ज्ञान कभी सब मनुष्यों के लिए सुलभ रहा? नहीं रहा तो क्यों नहीं रहा? क्या यह ईश्वरकृत भेदभाव व पक्षपात न कहा जाएगा? हम बता चुके हैं कि इनके ईश्वरीय ज्ञान कहे जाने वाले ग्रन्थ स्वयं घोषणा कर रहे हैं कि कभी भूमण्डलभर की एक ही भाषा रही है। आज हम डंके की चोट पर इनकी इस घोषणा को नकार रहे हैं। यह उनकी अज्ञानता है जो हमारे देश से ही आयातित है। हम भी संस्कृत को 'देवभाषा' कहते हुए नहीं थकते। हमने जो निरुक्त, काठक संहिता और तैत्तरीय संहिता के जो वचन दिये हैं, वे तो यह प्रमाणित करते हैं कि संस्कृत मानुषी भाषा है। रामायण भी यही घोषणा कर रही है तो हमें भी यह सत्य स्वीकार कर लेना चाहिए। अब भी कोई कठिनाई हो तो भरत मुनि के नाट्यशास्त्र का यह घोष सुन लो-

अतिभाषा तु देवानां आर्य भाषा तु भू भुजाम्।
संस्कार पाठ्य संयुक्ता, सप्तद्वीपा प्रतिष्ठिता॥

(१७.२८.२९)

अर्थात् अतिभाषा तो देवों की और आर्यभाषा राजपुरुषों की। प्रकृति प्रत्यय के पूर्ण संस्कार से युक्त सातों द्वीपों में प्रचलित-प्रतिष्ठित भी। वेदों के ईश्वरीय ज्ञान होने की भाषा की दृष्टि से इससे प्रबलतम युक्ति क्या हो सकती है कि वेद की भाषा को हमारे ऋषि-मुनि परम्परा से देव भाषा के रूप में जानते-मानते और प्रचारित करते आये हैं। यह भाषा मानवीय हस्तक्षेप से सर्वथा मुक्त है। बात चाहे व्याकरण में बाँधने की हो, या उच्चारण की सुविधा की, देव भाषा के सामने मानव की सामर्थ्य बौनी ही रही है। संसार का सारा साहित्य सारी भाषाएँ, समग्र सभ्यता-संस्कृति के उच्च आदर्श-परम्परायें नष्ट हो जाएँ, केवल वेद ही शेष बचें तो कालान्तर में उन वेदों के आश्रय से मानव तपः साधना के सहारे सब कुछ पुनः प्राप्त कर लेगा, क्योंकि वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। मनु की घोषणा है-

सर्वेषां तु नामानि कर्माणि च पृथक्-पृथक्।
वेद शब्देभ्य एवादौ पृथक् संस्थाश्च निर्ममे।

(१.२१)

चातुर्वर्ण्यं त्रयो लोकाः चत्वारश्चाश्रमाः पृथक्।
भूतं भव्यं भविष्यत् च सर्वं वेदात् प्रसिद्धति॥

(१२.९७)

संसार की सब वस्तुओं व्यक्तियों के नाम, कर्म से लेकर चारों वर्ण-आश्रम आदि शब्द-व्यवहार का प्रारम्भ, भूत-भविष्य वर्तमान आदि वेद से ही प्रसिद्ध होकर लोक व्यवहार में प्रचलित हुए हैं। क्या ऐसा उन ग्रन्थों से सम्भव है, जिन्हें कुछ लोग ईश्वरीय ज्ञान बताते हैं। उनसे पहले भाषा विद्यमान

(शेष पृष्ठ १५ पर)

॥ ओ३म् ॥

एक प्रश्न- द्रौपदी की रक्षा का

-राजेशार्य आट्टा पानीपत-१३२१२२, (मो०: ०९९११२९११३१८)

प्रिय पाठकवृन्द ! मैं एक बार किसी प्रतिष्ठित आर्यसमाज में बोल रहा था कि परमात्मा हमारा रक्षक तो है, पर वह इस तरह रक्षा नहीं करता जैसे लोगों ने कहानी बना रखी है कि द्रौपदी ने सभा में अपमानित होते हुए जब भगवान श्री कृष्ण को पुकारा, तो उन्होंने अदृश्य रूप में वहाँ आकर वस्त्र बढ़ाया। यह तो अवतारवादी लोगों ने महाभारत में मिलावट की हुई है। यह सुनकर एक श्रोता ने प्रश्न किया-फिर द्रौपदी की रक्षा किसने की थी?

मैंने कहा-जब पाण्डव जूए में सब कुछ हारकर (स्वयं व द्रौपदी को भी) कौरवों के दास बन गए और द्रौपदी को दासी बताकर दु:शासन उसे सभा में घसीटकर लाया, तो उसने सभा में बैठे सभी बड़े-बूढों से प्रश्न किया-कि जब युधिष्ठिर स्वयं हार चुके थे, तो उन्हें मुझे दाँव पर लगाने का क्या अधिकार था? भीष्म भी कोई ठीक उत्तर नहीं दे पाए। रोती हुई द्रौपदी की दुरावस्था देखकर भीम ने युधिष्ठिर पर क्रोध करते हुए सहदेव से कहा- आग ले आओ, मैं द्रौपदी को दाँव पर लगाने वाली युधिष्ठिर की बांहों को जलाऊँगा। अर्जुन ने भीम को शान्त किया। तब दुर्योधन के भाई विकर्ण ने द्रौपदी का पक्ष लेते हुए सभी से वह प्रश्न पूछा और अंत में कहा-"युधिष्ठिर ने धूर्त जुआरियों से प्रेरित होकर द्रौपदी को दाँव पर लगाया था। मैं द्रुपद कुमारी कृष्णा को जीती हुई नहीं मानता।" यह सुनकर सभी सभासद विकर्ण की प्रशंसा और शकुनि की निन्दा करने लगे। उस समय वहाँ बड़ा कोलाहल मच गया। इसके बाद कर्ण ने क्रोधित होकर विकर्ण के कथन का प्रतिवाद कर दु:शासन से कहा-

"दु:शासन ! यह विकर्ण अत्यन्त मूढ़ है, तथापि विद्वानों की-सी बातें बनाता है। तुम पाण्डवों के और द्रौपदी के भी वस्त्र उतार लो।" (महासभा पर्व 68-38)

"कर्ण की बात सुनकर समस्त पाण्डव अपने-अपने उत्तरीय वस्त्र उतारकर सभा में बैठ गये।"(39)

ततो दु:शासनो राजन् द्रौपद्या वसनं बलात् ।
सभामध्ये समाक्षिप्य व्यपाक्रष्टुं प्रचक्रमे ॥40॥

"राजन् ! तब दु:शासन ने उस भरी सभा में द्रौपदी का वस्त्र बलपूर्वक पकड़कर खींचना प्रारम्भ किया।"

प्रबुद्ध पाठक ! जरा सोचिये, जो भीम द्रौपदी को दाँव पर लगाने वाले अपने बड़े भाई युधिष्ठिर के हाथों को जलाने के लिए तैयार हो गया था, फिर वह दु:शासन द्वारा द्रौपदी का वस्त्र उतारने के समय किसी चमत्कार की प्रतीक्षा करेगा क्या ? बस इसीलिए कहता हूँ कि द्रौपदी द्वारा श्रीकृष्ण को पुकारना और श्रीकृष्ण द्वारा अदृश्य रूप में वस्त्र बढ़ाना प्रक्षेप (मिलावट) है। उपरोक्त श्लोक के बाद सीधा यह श्लोक आता है-

शशाप तत्र भीमस्तु राजमध्ये बृहत्स्वनः ।
क्रोधाद् विस्फुरमाणौष्ठो विनिष्पिष्य करे करम् ॥50॥
इदं मे वाक्यमादधवं क्षत्रिया लोकवासिनः ।
नोक्तपूर्वं नरैरन्यैर्न चान्यो यद्वदिष्यति ॥51॥
ङा यद्येतदेवमुक्त्वाहं न कुर्यां पृथिवीश्वराः ।
पितामहानां पूर्वेषां नाहं गतिमवाप्नुयाम् ॥52॥
अस्य पापस्य दुर्बुद्धेर्भारतापसदस्यच ।
न पिबेयं बलाद वक्षो भित्त्वा चेद रुधिरं युधि ॥53॥
धिक्शब्दस्तु तत्रस्तत्र समभूल्लोमहर्षणा ।
सभ्यानां नरदेवानां दृष्ट्वा कुन्तीसुतांस्तथा ॥56॥

"उस समय वहाँ समस्त राजाओं के बीच हाथ पर हाथ मलते हुए भीमसेन ने क्रोध से फड़कते हुए ओठों से भयंकर गर्जना के साथ यह शाप दिया (प्रतिज्ञा की)।

"देश-देशान्तर के निवासी क्षत्रियो ! आप लोग मेरी इस बात पर ध्यान दें। ऐसी बात आज से पहले न तो किसी ने कही होगी। और न दूसरा कोई कहेगा ही। भूमिपालो! यह खोटी बुद्धिवाला दु:शासन भरतवंश के लिए कलंक है। मैं युद्ध में बलपूर्वक इस पापी की छाती फाड़कर इसका रक्त पीऊँगा। यदि न पीऊँ अर्थात् अपनी कही हुई उस बात को पूरा न करूँ, तो मुझे अपने पूर्वज बाप-दादों की श्रेष्ठ गति न मिले।"

'उस समय कुन्ती पुत्रों की ओर देखकर सभा में उपस्थित नरेशों की ओर से दु:शासन पर रोमांचकारी शब्दों में धिक्कार की बौछार होने लगी।"

मेरे विचार से कर्ण से प्रेरित हुआ निर्लज्ज दु:शासन जब द्रौपदी का वस्त्र (रानीवाला) उतारने लगा तभी भीम ने हुँकार कर दु:शासन-वध की प्रतिज्ञा की और उससे उत्साहित हुए उपस्थित राजाओं ने दु:शासन को धिक्कारा । इस हुँकार और धिक्कार ने ही हतोत्साहित कर दु:शासन को नीच कर्म से अलग किया होगा। श्रीकृष्ण के चमत्कार वाले श्लोक (41-49) प्रक्षिप्त मानने चाहिएं। यदि वास्तव में श्रीकृष्ण द्यूत सभा में आ जाते, तो वे वस्त्र बढाने की जादूगरी न दिखाकर दाशासन का हाथ काटने का चमत्कार दिखाते फिर निर्लज्ज व अहंकारी दुर्योधन ने "द्रौपदी को अपनी नंगी जाँघ न दिखाई होती। अथवा यहाँ भी कोई चमत्कार श्रीकृष्ण द्वारा दिखाया गया होता--या तो दुर्योधन की जाँघ का वस्त्र नहीं हटता अथवा दुर्योधन की जाँघ फट जाती। पर ऐसा कुछ नहीं हुआ। यहाँ भी भीम ने तत्काल प्रतिज्ञा की। देखिये-

द्रौपद्याः प्रेक्षमाणायाः सव्यमूरुमदर्शयत् ॥2॥
भीमसेनस्तमालोक्य नेत्रे उत्फाल्य लोहिते ।
प्रोवाच राजमध्ये तं सभां विश्रावयन्निव ॥3॥
पितृभिः सह सालोक्य मा स्म गच्छेद वृकोदरः ।
यद्येतमूरुं गदया न भिन्द्यां ते महाहवे ॥4॥

(दुर्योधन ने) अपनी बायीं जाँघ (वस्त्र हटाकर) द्रौपदी की दृष्टि के सामने करके (मुसकराते हुए) दिखायी। उसे देखकर भीमसेन की आँखें क्रोध से लाल हो गयीं। वे आँखें फाड़ फाड़कर देखते और सारी सभा को सुनाते हुए-से राजाओं के बीच में बोले–

"दुर्योधनः यदि महासमर में तेरी इस जाँघ को मैं अपनी गदा से न तोड़ डालूँ तो मुझ भीमसेन को अपने पूर्वजों के साथ उन्हीं के समान पुण्य लोकों की प्राप्ति न हो।" (सभा, अ०11)

इस प्रतिज्ञा को सुनकर ही डरे हुए धृतराष्ट्र ने दुर्योधन को फटकारा व द्रौपदी को वरदान में सब धन सम्पत्ति, राज्य आदि लौटा दिये। इस प्रकार कहा जा सकता है कि यद्यपि पाण्डव धर्म बन्धन में बँधे हुए थे, फिर भी द्रौपदी की रक्षा भीम ने की थी, श्रीकृष्ण ने नहीं। श्रीकृंष्ण ने तो कहा था–यदि मुझे जूए की सूचना मिल जाती तो मैं कौरवों के न बुलाने पर भी द्यूत स्थान पर अवश्य पहुँच जाता और जूए के दोष बताकर उन्हें रोकता। वे नहीं मानते तो उन्हें मार डालता। (वन० 13-2, 13)

उसी समय (वन में) द्रौपदी कृष्ण के पास दुःशासन द्वारा किये गये अपने अपमान की कथा सुनाकर क्रोध और शोक से भरी खूब रोयी और यह भी कहा कि मेरे बलवान सहायक होते हुए भी किसी ने मेरी सहायता नहीं की, तुम (कृष्ण) ने भी नहीं की। इसलिए मेरा पति, पुत्र, भाई, पिता व कृष्ण आदि कोई नहीं है–

नैव मे पतयः सन्ति न पुत्रा न चबान्धवाः ।
न भ्रातरो न च पिता नैव त्वं मधुसूदन ॥ (वन० 12/125)

यहाँ द्रौपदी ने सहायता न करने के कारण कृष्ण को उलाहना तो दिया है, पर तथाकथित सहायता (वस्त्र बढ़ाना) के लिए धन्यवाद नहीं किया। अतः द्रौपदी द्वारा श्रीकृष्ण को पुकारना और श्रीकृष्ण द्वारा अदृश्य रूप में वस्त्र बढ़ाना मिलावट मानना चाहिए। श्रीकृष्ण को परमात्मा मानने वाले भक्तों ने इसी अन्धविश्वास में जीकर हजारों मन्दिर लुटवा दिये, लाखों द्रौपदियों का चीर हरण (विधर्मियों द्वारा) करवा दिया, करोड़ों गायों की हत्या होती अपनी आँखों से देख ली, पर चमत्कार के संस्कार नहीं छोड़े।

सर्वान्तर्यामी ईश्वर तो हमारी रक्षा दो प्रकार से (मुख्यतः) करता है–

1. बुद्धि में ज्ञान-विवेक पैदा करके हमें दुर्गुणों व दुर्व्यसनों से बचाता है व संकट सहने की आत्मिक शक्ति प्रदान करता है।

2. दूसरे मनुष्यों को हमारी सहायता की प्रेरणा (अन्तः करण में) देकर उनके माध्यम से हमें मुसीबत से उभारता है। यह तो सत्य है कि ईश्वर हमारी रक्षा (सहायता) करता है, पर हमें अपनी रक्षा के लिए स्वयं भी प्रयत्नशील होना चाहिए।

(नोट- रामायण-महाभारत से सम्बन्धित कुछ ऐसे ही प्रश्नों के समाधान के लिए लेखक की पुस्तक 'राम-गंगा' प्राप्ति हेतु सम्पर्क करें–श्री दिनेश कुमार शास्त्री मो० नं० 9650522778) ❑❑

सब मनुष्यों को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम पालने में सब स्वतन्त्र रहें ।

–महर्षि दयानन्द

॥ ओ३म् ॥

मृतक श्राद्ध का विचार वैदिक सिद्धान्त पुनर्जन्म के विरुद्ध है

–मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून (मो० : ०९४१२९८५१२१)

महाभारत युद्ध के बाद वेदों का अध्ययन-अध्यापन अवरुद्ध होने के कारण देश में अनेकानेक अन्धविश्वास एवं कुरीतियां उत्पन्न हुईं। सृष्टि के आरम्भ में सर्वव्यापक एवं सर्वातिसूक्ष्म व सर्वज्ञ ईश्वर से प्राप्त वैदिक सत्य सिद्धान्तों को विस्मृत कर दिया गया तथा अज्ञानतापूर्ण नई-नई परम्पराओं का आरम्भ हुआ। ऐसी ही एक परम्परा मृतक श्राद्ध की है। मृतक श्राद्ध में यह कल्पना की गई है कि हमारे मृतक पूर्वज व पितरों को वर्ष में एक बार आश्विन महीने के कृष्ण पक्ष में आवाहन कर भोजन एवं उनकी प्रिय वस्तुओं के दान से उन्हें सन्तुष्ट करना चाहिये।

यह उच्च मानवीय भावना तो है परन्तु यह सत्य पर आधारित न होने से एक आधारहीन व अनावश्यक परम्परा व कार्य है। इससे मनुष्य जाति की उन्नति न होकर अवनति होती है। इसे व्यवहारिक रूप दिया ही नहीं जा सकता अर्थात् मृतक पितरों को भोजन कराया ही नहीं जा सकता। यह एक ऐसा अन्धविश्वास है जिसे हम अपनी आंखें मूंद कर करते है। मृतक श्राद्ध करने पर कोई मृतक पितर व पूर्वज सशरीर भोजन करने श्राद्ध स्थान पर उपस्थित नहीं होता। उनके नाम पर जन्मना ब्राह्मण कहे जाने वाले लोगों को पकवान व भोजन परोसे जाते हैं, दान दक्षिणा दी जाती है और यह मान लिया जाता है कि हमारे मृतक पितर व पूर्वज हमारे कराये भोजन से सन्तुष्ट हो गये हैं। यह एक ऐसी परम्परा व धारणा है जिसे हम ज्ञान व विज्ञान के आधार पर प्रस्तुत नहीं कर सकते। वेदों में इसका कहीं विधान नहीं है।

वेद व वैदिक परम्परा में हम परिवार के जीवित माता, पिता, पितामह, पितामही, प्रपितामह तथा प्रपितामही की ही श्रद्धापूर्वक सेवा करने तथा उन्हें अपने आचरण एवं व्यवहार से सन्तुष्ट रखने का विधान है। मध्यकाल के जिन दिनों में इस परम्परा को आरम्भ किया गया, उस अवसर पर इस बात को विस्मृत कर दिया गया कि घर के जीवित पितरों माता, पिता से प्रपितामह व प्रपितामही तक का श्राद्ध अर्थात् श्रद्धापूर्वक-सुश्रुषा सेवा प्रतिदिन करने का विधान है परन्तु मृतक पितरों पर यह लागू ही नहीं होता।

मृतक परिजनों के मरने के बाद कुछ ही दिनों व महीनों में ईश्वर की व्यवस्था से वह अपने जीवन के शुभ व अशुभ अथवा पुण्य व पाप कर्मों का फल भोगने के लिये कर्मानुसार नये जीवन व जन्म को प्राप्त हो जाते हैं। वहां उनकी व्यवस्था सर्वव्यापक, सबके आधार तथा सबके धारणकर्ता परमात्मा की कृपा से वह पुनर्जन्म को प्राप्त जीवात्मायें स्वयं व उन जीवात्माओं के नये जीवन के परिवारजन करते हैं। हमारे भोजन कराने से हमारे किसी मृतक पितर को भोजन पहुंचना सर्वथा असम्भव है। अतः वेदों के शीर्ष वेदाचार्य

ऋषि दयानन्द ने इस वेदविरुद्ध प्रथा को अस्वीकार कर पंचमहायज्ञों के अन्तर्गत पितृ-यज्ञ करते हुए अपने घर के सभी जीवित पितरों व वृद्धों की आदर व सम्मान से सेवा करने व उन्हें भोजन, वस्त्र एवं ओषधि आदि से सन्तुष्ट रखने के विधान को जारी रखा है और जीवित पितरों की सेवा व उनको सन्तुष्ट रखने को ही वैदिक सत्य परम्परा व पितरों का "श्राद्ध" कर्म माना है।

मनुष्य व सभी प्राणी एक सत्य व चेतनता के गुण से युक्त एकदेशी, ससीम, अनादि, नित्य, अल्पज्ञ, कर्म-फल के भोक्ता, मनुष्य योनि में कर्म करने में स्वतन्त्र तथा कर्मों के फल भोगने में परतन्त्र जीवात्मा होते हैं। कर्म ही जन्म का परिणाम होते हैं। हमारा वर्तमान जन्म भी हमारे पूर्वजन्म के पाप-पुण्य कर्मों का फल भोगने के लिये हुआ है और हमारी मृत्यु हमारे शरीर की जन्म, वृद्धि व नाश के सिद्धान्त के आधार पर वार्धक्य में रोग आदि कारणों से होती है। 'जातस्य हि ध्रुवो मृत्यु ध्रुवं जन्म मृतस्य च' सिद्धान्त के अनुसार जिस जीवात्मा का जन्म हुआ है उसकी मृत्यु और जिसकी मृत्यु होती है उसका जन्म होना निश्चित व ध्रुव सत्य है। इस सिद्धान्त के अनुसार मृत्यु के बाद जीवात्मा का नया जन्म हो जाता है।

नये जन्म में सभी जीवात्माओं को माता, पिता, भाई, बन्धु व परिजन सब प्राप्त होते हैं और वह स्वयं व परिवार के सहयोग से भोजन सहित अपनी सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं। उसे अपने पुराने जन्मस्थान के सम्बन्धियों से भोजन प्राप्त करने की किंचित भी आवश्यकता नहीं है। मृतक श्राद्ध विषयक विचार व मान्यतायें काल्पनिक हैं। वेदों व ऋषियों के ग्रन्थों में इस मान्यता का कहीं आधार नहीं है। अतः इस वेद-विरुद्ध कार्य को हमें करना नहीं चाहिये। यह अविद्यायुक्त कार्य है। इसे हम वेद, वैदिक साहित्य सहित ऋषि दयानन्द के द्वारा अपने अमर ग्रन्थ सत्यार्थप्रकाश में प्रस्तुत विचारों व वैदिक सिद्धान्तों का अध्ययन कर जान सकते हैं व सभी अवैदिक कृत्यों को करना छोड़ सकते हैं। अविद्या दूर करने का यही उपाय है कि वेद व वैदिक साहित्य सहित सत्यार्थप्रकाश ग्रन्थ का अध्ययन किया जाये और प्रत्येक कार्य को सत्य व असत्य का विचार कर, उसकी परीक्षा कर, उसके तर्क एवं युक्तिसंगत होने के साथ वेद से पुष्ट होने पर ही स्वीकार किया जाये। ऐसा करने से हम अपने मनुष्य जीवन को सार्थक कर जीवन के लक्ष्य धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष को प्राप्त हो सकते हैं। ऐसा न करने से हम अपने जीवन के लक्ष्य आत्मोन्नति व मोक्ष से दूर होते जाते हैं जिसे करना किसी भी मनुष्य के लिये उचित नहीं है। अतः मृतक श्राद्ध को करने से पूर्व इस विषय का विशद अध्ययन कर इसकी आवश्यकता, इससे सम्भावित लाभों की पूर्ति तथा मृतक पितरों की अवस्था एवं आवश्यकताओं पर वेद के परिप्रेक्ष्य तथा सामान्य ज्ञान के अनुसार भी विचार कर लेना चाहिये। ऐसा करने से हम सत्य निर्णय कर एक सत्य परम्परा का निर्वहन करने में समथ होंगे जिसका करना हमारे मनुष्य होने अर्थात् मननशील होने व सत्य का ग्रहण करने तथा असत्य का त्याग करने के नियम की दृष्टि से आवश्यक है।

सनातन वैदिक धर्म आत्मा के जन्म व मरण के सिद्धान्त अर्थात् पुनर्जन्म को स्वीकार करता है। जन्म के समय हमारे सभी संबंध बनते हैं तथा मृत्यु होने पर सभी सम्बन्ध समाप्त हो जाते हैं। मृत्यु होने पर न तो मृतक आत्मा को अपने पूर्व संबंधों व संबंधियों का ज्ञान रहता है और न ही जीवित परिजनों को आत्मा का पता होता है कि मृत्यु के बाद उसका कहां, किस योनि व अवस्था

में जन्म हुआ है अथवा उसका मोक्ष हुआ या नहीं हुआ है। ऐसी अवस्था में अपने परिजनों की मृत्यु के बाद उनका वर्ष में एक बार आश्विन माह में मृतक श्राद्ध करना उचित नहीं है।

जब हमारा दूसरों को कराया भोजन सम्मुख उपस्थित मनुष्य तक ही नहीं पहुंचता, तो मरे पीछे वह उन आत्माओं तक किसी रीति से पहुंच सकता है, ऐसा मानना कल्पना मात्र है। बिना वेद विधन व ऋषियों की सत्योक्त बातों के हमें किसी भी अन्धविश्वास व परम्परा को न तो मानना चाहिये न ही उसका समर्थन करना चाहिये। हमारी आर्यजाति का पतन इन व ऐसी काल्पनिक मान्यताओं व सिद्धान्तों का अनुसरण तथा सत्य वैदिक सिद्धान्तों को छोड़ देने के कारण से ही हुआ है। अत: सत्यासत्य का विचार कर सत्य सिद्ध कार्यों को ही करना मनुष्यों के लिए उचित व विपरीत का छोड़ना आवश्यक है।

हमारा सौभाग्य है कि आर्यजाति को पांच हजार वर्षों के बाद ऋषि दयानन्द नाम के एक सच्चे योगी व वेद ऋषि प्राप्त हुए थे। उन्होंने वेदों का उद्धार कर वेद के सत्य अर्थों का प्रचार किया था। उनकी सभी मान्यतायें वेद तथा तर्क व युक्ति पर आधारित हैं। उन्होंने ही हमें ईश्वर के सच्चे स्वरूप के दर्शन कराये और ईश्वर का ध्यान करने की विधि तथा वेद व ऋषियों की आज्ञाओं का पालन करते हुए प्रतिदिन पंचमहायज्ञों को करने की आज्ञा से परिचित कराया।

हमारा सौभाग्य है कि हम आर्यों के पांच महाकर्तव्य रूप पंचमहायज्ञों को करते हैं जिसका परिणाम मनुष्य की शरीरिक, आत्मिक एवं सामाजिक उन्नति होती है और वृद्धावस्था में मृत्यु व शरीर परिवर्तन होने सहित जन्म व मरण से अवकाशरूप मोक्ष प्राप्ति के रूप में होती है। हमें न केवल स्वयं ही वेदों का पालन व आचरण करना है अपितु अपने परिवार व संबंधियों सहित सृष्टि के जन-जन में वेद प्रचार कर उनसे भी वेदाचरण करवाना है। ऐसा करने से ही हमारा जीवन सार्थक व सफल होगा। हमारी यह पृथिवी देवों की धरा व धाम में परिणत हो सकेगी। मृतक श्राद्ध व जड़ पूजा जैसे अवैदिक कृत्यों से मुक्ति मिलेगी और देश व समाज उन्नति को प्राप्त होंगे। ओ३म् शम्। ❑❑

(पृष्ठ ९ का शेष) **वेद ईश्वरीय ज्ञान है**

थी, संसार का सब व्यवहार सुचारू रूप से चल रहा था जीवन के हर क्षेत्र में मनुष्य ने पर्याप्त प्रगति कर ली थी, अच्छे-बुरे, धर्म-अधर्म, सत्य-असत्य का सम्यक् ज्ञान मानव को था, तब परमात्मा को अपना ऐसा तथाकथित ज्ञान देने की क्या आवश्यकता थी जो न्याय-नीति व ज्ञान-विज्ञान के मापदण्डों के निकट जाने से ही डरता है? वस्तुत: धरती तल पर वेद ही एक मात्र ऐसा सच्चा ईश्वरीय ज्ञान है, जिसे हर कसौटी पर परखकर, हर तुला पर तौलकर तर्कों-युक्तियों व प्रमाणों सहित ईश्वरीय ज्ञान सिद्ध किया जा सकता है!

न अन्य: ग्रन्था: विद्यतेऽमनाय। ❑❑

ब्रह्मचर्य

ऋषि दयानन्द ब्रह्मचर्य की मर्यादा का कितना ध्यान रखते थे, उसका कुछ अनुमान इस घटना से किया जा सकता है कि एक दिन जब वे मथुरा में यमुनातट के विश्रांत घाट पर समाधीस्थ थे, उस समय एक देवी ने श्रद्धा से अपना सिर उनके पाँव पर रख दिया तब उन्होंने प्रायश्चित रूप में ३ दिन का उपवास रखा था।

पाप से मुक्ति पाने का वादा हर पन्थों ने किया है

–पं० महेन्द्रपाल आर्य (मो० :- ९८१०७९७०५६)

पक्ष दो हैं यह शाश्वत है, आदि सृष्टि से है और अन्त तक ही रहना है, जैसे–धर्म, अधर्म, मानव, दानव, कृष्ण पक्ष, शुक्ल पक्ष, प्रकाश-अन्धकार, रात और दिन, जन्म और मृत्यु, सही और गलत, इसी प्रकार पाप और पुण्य भी है।

पाप मानवों से होता है, कारण मानव अल्पज्ञ है, पाप मानव ही करता है, और पुण्य भी मानव करता है अर्थात मानव का जीवन दोनों पक्षों में है। इन मानवों में जो पुण्य आत्माएं हैं यानि जिन्होंने देवत्व को प्राप्त किया है, अथवा जिन्हें देवता कहा जाता है। यह बात भी याद रखना चाहिए देवता कोई आसमान से गिरते नही हैं; यही मानव ही अपने कर्मों से देवता बनते हैं और राक्षस भी। जिन मानवों ने देवत्व को प्राप्त किया है वही पुण्य आत्मा कहलाते हैं जिन से पाप नही होता, और ना वह पाप करते हैं। साधरण मनुष्य से ही पाप भी होता है और पुण्य भी, किन्तु जो मनुष्य अपने पुण्य कर्मों से देव कोटि में हो गये उनसे कभी पाप नही होता, और ना वह पाप कर्मों को करते हैं ।

अब साधरण मानव पाप और पुण्य दोनों में जीवन जीता है कुछ जान कर पाप करते हैं, और कुछ अनजान में भी पाप कर बैठते हैं। अब इन पाप करने वालों ने धर्म के आड़ में पाप कर उससे छुटकारा देने दिलाने, और पाने का ठेका मजहबी ठेकेदारों ने बताया है, कि हमारे मजहब में हमारे दीन में, या हमारे धर्म में पाप से मुक्ति पाने का तरीका है, या हम ही पाप से मुक्ति दिला सकते हैं आदि, जैसी यह मान्यता ईसाई और इस्लाम वालों की है, अथवा मत पन्थ वालों की है।

यह मान्यता हर मत पन्थ वालों ने इन्ही मानव कहलाने वालों को अपने में जोड़ने का मिलाने का तरीका निकाला है। इधर मानव जो विचारवान, अकल वाला, होकर भी उन्हीं मजहबी दुकानदारों के चंगुल में फंस जाते हैं ।और फिर अपने घर जहाँ उसने जन्म लिया था, उन्हें यह पराया बना लेते हैं, यहाँ तक कि उनके जानी दुश्मन भी बन जाते हैं। इसी पाप से मुक्ति पाने और स्वर्ग में भेजने का लोभ और लालच दे कर इन मजहबी दुकानदारों ने मानव समाज को आपस में लड़ाया है, एक दूसरे के खून के प्यासे तक बना दिया गया। आज आये दिन हम अखबार में पढ़ते और दूरदर्शन में सुनते हीं रहते हैं, जो जीता जागता प्रमाण पश्चिम बंगाल के मालदा, और बिहार के पूर्णिया में हुआ है। उससे पहले उत्तरप्रदेश का मुजफ्फर नगर और किराना का है या पूरे विश्व भर में हमें देखने को मिलते हैं आदि ।

अब देखें कोई कुछ भी कहे हम मानव होने के कारण, परमात्मा ने हमें दिमाग दिया है सोचने और समझने के लिए ही। तो सही में आज यह मानव कहला कर भी अपने दिमाग से सोच और विचार करते तो क्या हम मानव हो कर भी मानवता पर कुठाराघात करते? सब मिला कर मानवता की हत्या करने में एक दूसरे को मात दे रहे हैं । और इसे धर्म का नाम दे कर मानव को अपने चंगुल में फंसाकर मजहब के नाम से अपनी दुकान ही चला रहे हैं, यह समझने को तैयार नहीं। यह ईसाई लोग कह रहे हैं भले ही तुम्हारा जन्म कहीं पर किसी सम्प्रदाय में हुवा हो तुम ईसाई बन जाओ बपतिस्मा ले लो। यहोबा के शरण में आ जाओ। तुम्हारे सारे पाप खत्म हो जाएँगे पाप से मुक्त हो जाओगे हेवेन (स्वर्ग) में चले जाओगे जहाँ पर सभी प्रकार का सुख ही सुख

मिलेगा, खाने पीने से लेकर अप्सराएँ तक मिलेंगी आदि। इनके बात पर वह लोग फंसे है, जो सत्य और असत्य की परख नहीं करते, सही क्या है और गलत क्या है इसका बोध जिनके पास नहीं होता, मुफ्तखोरी में जो लोग विश्वास करते हैं, जीते जी न पा कर, मरने के बाद ही जो लोग पाना चाहते हैं, जिस मानव कहलाने वालों ने किसी ने देखा तक नही, उस जन्नत को उसी पर विश्वास करते हैं, वही लोग इस लोभ और लालच में आकर यही सब काम करते हैं मरने मिटने, काटने, कटवाने में विश्वास करते हैं। जो अभी महाराष्ट्र में एक संन्यासी रामगिरी पर मुसलमान उसे मौत के घाट उतारने को आतुर हैं गुस्ताखे रसूल कह कर। आज से दो वर्ष पहले यही तांडव नुपुर शर्मा को ले कर किया था। भले हि वह मानवता विरोधी क्यों ना हो उसे धर्मिक नाम दे कर आज मानव कहलाने वाले अक्ल को ताक पर रखते हुए इस काम को करने में न लज्जा, न भय, और ना ही कोइ संकोच करते हैं, और मानव की हत्या करने पर एक दूसरे को मात दे रहे हैं।

जिस प्रकार ईसाइयों ने कंहा हमारे ईसाई धर्म को स्वीकार करोगे तो पाप से मुक्ति मिलेगी, और स्वर्ग में भी बहुत कुछ मिलेगा। ठीक इसी प्रकार इस्लाम वालों का भी कहना यही है कि इस्लाम स्वीकार करो तो पाप से छुटकारा पा जावोगे और जन्नत में बहुत कुछ मिलेगा, फल, मूल कन्द, से लेकर पवित्र शराब तक मिलेंगे। फिर शराब के साथ कवाब परिन्दों के गोश्त का, और शवाब भी, यानि वहां हूर (सुन्दर स्त्री) सुन्दर लौंडे भी मिलेंगे जिसे गिलमाँन बताया गया है। यह बहुत ही सुख और शांति की जगह है, एक बार सिर्फ ला ईलाहा इल्लाल्लाहू मुहम्मदुर रसूलल्लाह जुबान से पढलो दिल से इकरार कर लो बस तुम्हारी सीट पक्की दुनिया की कोई ताकत तुम्हें रोक नही सकती, कि तुम्हारी पाप से मुक्ति न मिले। यानि तुम्हें पाप से तो मुक्ति मिलेगी ही और अल्लाह तुम्हें जन्नत नसीब करेंगे जहाँ यही सब कुछ तुम्हें मिलेंगे अथवा अल्लाह तुम्हें उपलब्ध करायेंगे आदि, जो कुरान में अल्लाह ने बहुत जगह वादा किया है। यह सब कब मिलेंगे? मरने के बाद जो किसी ने देखा भी नहीं, और न देखा जाना सम्भव।

तो सब ने यानि ईसाइयों ने और मुसलमानों ने दोनों ने कहा भाई यह सभी मरने के बाद ही मिलेंगे उस से पहले नहीं। और यही अक्ल के दुश्मन लोग हैं कि जिन्होंने पाप, पुण्य को नहीं जाना, स्वर्ग, और नरक को भी नही जाना, और इस खयाली पुलाव पकाने और खाने में लग कर एक दूसरे को कत्ल करने में आमदा हो गये, और करके दिखा रहे हैं। जो आज आए दिन हमारे सामने सभी प्रकार के यही धर्म के नाम से घटनाएँ हो रही है, और हम मानव कहला कर मात्र मूक दर्शक बन कर देख व सुन रहे हैं।

यह समझने को तैयार नहीं, कि पाप से मुक्ति कौन चाहेगा? उत्तर मिला पापी, अर्थात यह सब के सब पापी लोग हैं जो पाप करते हैं और उसे बिना भुगते उससे मुक्ति छुटकारा पाना चाहते हैं। सही पूछें तो मानव समाज को इन्ही पापों में लिप्त किया यही सब मत, पन्थ वालों ने ही, मात्र अपनी दुकानदारी करने अपने मत को बढ़ावा देने के लिए अपनों में मिलाने के लिए ही महज मानव समाज को इस प्रकार मानवों से लड़ने लड़ाने का ही काम किया है जो आज नजर के सामने हैं, जिसे देख कर भी मानव कहलाने वाले समझने को तैयार नहीं। और यह मान्यता लिए, अथवा पाले बैठे हैं, कि हम अग्नि में हाथ डालें और हमारा हाथ जले भी नहीं। इसी का ही नाम अंधविंश्वास है, कुसंस्कार है, अन्धपरम्परा है।

यही मान्यता हिन्दू कहलाने वालों ने भी पाला है वह भी यही कहते हैं, कि पाप तुम्हारा नष्ट

(शेष पृष्ठ १९ पर)

महर्षि दयानन्द का एक महत्त्वपूर्ण काम–

आर्यसमाज की स्थापना

लेखक–लाला लाजपतराय

स्वामी जी की दृष्टि में आर्यसमाज का क्या उद्देश्य था ?

क्या स्वामी दयानन्द की दृष्टि में एक ईश्वर की उपासना का प्रचार करना और वेदों को सत्य विद्या का पुस्तक सिद्ध करना ही आर्यसमाज का काम था या इससे भिन्न भी वे इसका कोई उद्देश्य मानते थे? आर्य समाज के शेष नियम इस प्रश्न का उत्तर देने में समर्थ नहीं हैं यद्यपि छठा नियम यह कहता है कि – संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना। परन्तु इन शब्दों से यह नहीं समझना चाहिए कि स्वामी जी के कार्यक्रम में देश या जाति की उन्नति के लिये कोई स्थान नहीं था। 1 अप्रैल 1878 को दानापुर से लिखे एक पत्र में उन्होंने लिखा –

"आपकी इच्छानुसार कल 31 मार्च 1878 को दो छपे पत्र (आर्यसमाज के मुख्य दस उद्देश्य) भेज चुके हैं। रसीद शीघ्र भेज दीजिये और इन नियमों को ठीक-ठीक समझ कर वेद की आज्ञानुसार देश को सुधारने में अत्यन्त श्रद्धा, प्रेम और भक्ति, सबके परस्पर सुख के अर्थ तथा उनके क्लेशों को मेटने में सत व्यवहार और उत्कण्ठा के साथ अपने शरीर के सुख-दुखों के समान जान कर सर्वदा यत्न और उपाय करने चाहिए। क्योंकि इस देश से विद्या और सुख सारे भूगोल में फैला है। 'हिन्दू मत सभा' के स्थान में 'आर्यसमाज' नाम रखना चाहिए क्योंकि 'आर्य' नाम हमारा और 'आर्यावर्त' नाम हमारे देश का सनातन वेदोक्त है।"

फिर 12 अप्रैल 1878 के पत्र में लिखते हैं–

"अब आपकी दृष्टि देश सुधार पर होनी चाहिए।"

याद रखना चाहिए कि आर्यसमाज के दस नियम जून 1877 में नियत किये गये थे और ये पत्र अप्रैल 1878 में लिखे गये हैं। स्वामीजी की दृष्टि में आर्यसमाज का क्या उद्देश्य था, यह इन पत्रों से प्रकट होता है। क्या इन पत्रों से यह विदित नहीं होता कि स्वामी जी उन लोगों में नहीं थे जो मनुष्य मात्र के हित की तुलना में अपने देश और जाति का कोई स्वत्व नहीं मानते। वास्तव में बात यह है कि स्वामीजी पहले संस्कृत के विद्वान् थे जिन्होंने स्वार्थ के जाल में फँसे हिन्दुओं को बताया कि परोपकार और देशोपकार धर्म के दो प्रमुख अंग हैं और वैदिक धर्म में इन्हें बहुत ऊँचा स्थान प्राप्त है। जो मनुष्य परोपकार और देशोपकार नहीं कर सकते वे कभी धार्मिक भी नहीं हो सकते और देश के उपकार को जीवन का प्रथम ध्येय न मानने वाला भी कभी धार्मिक नहीं हो सकता।

बम्बई में जो नियम बनाये गये थे उनमें नियम 17 अपनी व्याख्या स्वयं ही करता है–

"इस समाज में स्वदेश के हितार्थ दो प्रकार की शुद्धि के लिये प्रयत्न किया जाएगा। एक परमार्थ और दूसरा लोक-व्यवहार। इन दोनों का शोधन और शुद्धता की उन्नति तथा सब संसार के हित की उन्नति की जाएगी।"

बम्बई के नियम यह भी बताते हैं कि स्वामीजी की सम्मति में आर्यसमाज के उद्देश्यों को प्राप्त करने के साधन क्या थे। 12वें नियम

में आर्यसमाज, आर्य विद्यालय, और आर्य प्रकाश (पत्र) के प्रचार और उन्नति के लिये 1 रुपया सैकड़ा चंदा लेने की शिक्षा है। यहाँ आर्यसमाज से आशय प्रचार और संगठन के खर्च से है। 19वें नियम में प्रचारक भेजने की बात आई है। 20वें में स्त्रियों और पुरुषों के लिये पाठशालाएँ नियत करने की आवश्यकता बताई गई है। लाहौर में बने तीसरे नियम में कहा है–

"वेदों का पढ़ना-पढ़ाना, सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।"

साथ ही आठवें में अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करने की आज्ञा है।

इसके अतिरिक्त दिल्ली के शाही दरबार के अवसर पर स्वामी जी की प्रेरणा से जो एक सम्मेलन आयोजित किया गया था वह भी उनकी देशभक्ति का परिचय देता है। (दृष्टव्य पण्डित लेखराम कृत उर्दू जीवनचरित, पृ॰ 264) स्वामीजी ने वहाँ कहा था –

"यदि हम लोग एकमत हो जायें और एक ही रीति से देश का सुधर करें तो आशा है देश शीघ्र सुधर सकता है।"

इस जीवनचरित में यह भी लिखा है कि एक स्थान पर स्वामीजी ने स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग पर एक विशेष व्याख्यान दिया।

इन सब तथ्यों से स्वामीजी का देशभक्त होना स्वत: ही सिद्ध हो जाता है। वस्तुत: वे तो देशभक्त महापुरुषों में भी शीर्ष स्थान पर बिठाये जाने की योग्यता रखते हैं। ऐसे लोग संसार में बहुत कम पैदा होते हैं जो देश और जाति के लिए प्राण तक न्यौछावर कर देते हैं। ऐसे मनुष्यों का कोई भी कार्यक्रम स्वदेश और स्वजाति के हित से रहित नहीं हो सकता। अत: हम निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि देश और जाति के सुधार की एक सुनिश्चित योजना स्वामी दयानन्द के पास थी।

स्रोत : युग-प्रवर्तक स्वामी दयानन्द, पृष्ठ 67-68, प्रस्तुतकर्ता : भावेश मेरजा,

---

(पृष्ठ १७ का शेष) **पाप से मुक्ति पाने का वाबा हर पन्थों ने किया है**

हो जायेगा अगर एक बार तुम गंगासागर में नहा लो, इलाहाबाद में गंगा यमुना और सरस्वती तीनों नदी का मेल जहाँ है उसी जगह नहा लो तो पाप से मुक्ति मिल जाएगी। वहाँ भी वही पापी लोगों की ही भरमार है जो पाप करें और भुगतना नहीं पड़े की मान्यता पाले हैं। यही समझ कर गंगा सागर में नहाते, और इलाहाबाद में नहाते, कि हमारा पाप धुल जाय।

दुनिया के लोग कितने भोले हैं कि पाप कर भी उसे भुगातना नहीं चाहते, मतलब यह हुवा कि खा कर भी उसे बाहर करना नहीं चाहते, यानि मल मूत्र नहीं करना चाहने वाली बात हो गई । पर यह मान्यता हिन्दू कहलाने वालों की नहीं, यह इस्लाम की है कि जन्नती जितने भी होंगे वह सिर्फ खायेंगे उन्हें निकालना नहीं पड़ेगा, यानि मल मूत्र आदि करना नही पड़ेगा, और शरीर यही मानव का ही होगा । है न अचम्भे की बात, कारण नाम व शरीर वही होगा जिसमें, दो कान के छिद्र, दो नाक के छिद्र, दो आँख के छिद्र, और दो मल मूत्र के छिद्र, और एक गाल यानि मुह के छिद्र सब मिलाकर 9 छिद्र वाली शरीर मानव का है। किन्तु कुरानी अल्लाह अथवा मुसलमानी अल्लाह के कुछ तकनीक अलग ही है, कि शरीर मानव का होगा किन्तु उसमें मल मूत्र के छिद्र नही होंगे। आज अगर जरूरत है तो इन्हीं सभी बातों पर विचार करने की जरूरत है, सही क्या है और गलत क्या है उस पर चिन्तन और मनन करने की जरूरत है। परमात्मा की सबसे उत्कृष्ट सृष्टि है यह मानव। मानव हो कर भी हमारा विचार अगर मानव जैसा नहीं है तो क्या हम मानव कहलाने के अधिकारी बनेंगे ? ❑❑

सांख्य में सृष्टि रचना के तीन स्तर

लेखकद्वय–आचार्य डॉ॰ हरिश्चन्द्र 'वेदरत्न' (न्यूयॉर्क) और
–अनिल आर्य (बेंगलुरू)
(सेण्टर फॉर इनर सायंसेज)

वेद में दी सृष्टि रचना को सांख्य ने इस प्रकार समझाया है कि मूल प्रकृति से महत्, अहंकार, पञ्च तन्मात्र/सूक्ष्मभूत बनते हैं। यह सूक्ष्म जगत् है। पञ्च तन्मात्र/सूक्ष्मभूत से पञ्चभूत बनते हैं जिनसे दृश्य बाह्य/स्थूल जगत् बनता है। तो सृष्टि के तीन स्तर हैं–

(१) मूल प्रकृति जिसे प्रधान भी कहते हैं।

(२) महत् से पञ्च तन्मात्र/सूक्ष्मभूत तक का सूक्ष्म जगत्।

(३) पञ्चभूत से बना दृश्य बाह्य/स्थूल जगत् जिसे हम पांच ज्ञानेन्द्रियों से जान पाते हैं।

यह सृष्टि तीन स्तर की है इसका एक उदाहरण मनुष्य भी है। हमारा स्थूल शरीर पञ्चभूत के तत्त्वों से बना है; यह ईश्वर की तृतीय स्तर पर रचना है। हमारे बुद्धि, अहंकार, मनस्, ५ बुद्धीन्द्रियाँ, ५ कर्मेन्द्रियाँ - कुल १३ करण हैं; इन १३ करण और पञ्च तन्मात्र/सूक्ष्मभूत - कुल १८ तत्त्वों का हमारा सूक्ष्म शरीर जन्म-मृत्यु के आवागमन में संलग्न रहता है। (**सांख्य ३.९ –सप्तदशैकं लिङ्गम्**)। ये १८ सूक्ष्म तत्त्व बुद्धीन्द्रियों द्वारा नहीं जाने जा सकते हैं और सृष्टि रचना में द्वितीय स्तर के हैं। प्रथम स्तर के शरीर को कारण शरीर कहते हैं जिसे हम सुषुप्ति में पाते हैं। तृतीय स्तर के स्थूल शरीर में द्वितीय और प्रथम स्तर के शरीरों का अन्तर्भाव है कि जाग्रत अवस्था में सब कार्यरत होते हैं। स्वप्नावस्था में प्रथम और द्वितीय स्तर के शरीर कार्यरत हैं कि द्वितीय स्तर के सूक्ष्म शरीर में प्रथम स्तर का अन्तर्भाव है। सुषुप्ति में आत्मा प्रकृतिरूप होता है कि मात्र कारण शरीर का–प्रथम स्तर का–अस्तित्व है। इसे सामान्यतः इस प्रकार समझ सकते हैं कि तृतीय स्तर की सृष्टि रचना में द्वितीय और प्रथम स्तर की सृष्टि का अन्तर्भाव है। उसी प्रकार, द्वितीय स्तर की सृष्टि रचना में प्रथम स्तर की सृष्टि का अन्तर्भाव है। इसलिए कारण प्रकृति विभु है कि सर्वत्र है - स्थूल और सूक्ष्म जगत् में भी। सृष्टि में जहाँ भी कोई स्थूल पदार्थ है तो उसमें - उस तृतीय स्तर की रचना में - सूक्ष्म तत्त्व भी होंगे और मूल प्रकृति भी। स्थूल पदार्थ में विद्यमान सूक्ष्मतत्त्व ही (क) स्थूल पदार्थ को स्थिरता देते हैं (**सांख्य ५.९१ - अनित्यत्वेऽपि स्थिरतायोगात्प्रत्यभिज्ञानं सामान्यस्य**) और (ख) दो सदृश स्थूल पदार्थों के - यथा, दो सदृश घटों के - तत्त्वान्तर (दो सदृश घटों में विद्यमान सूक्ष्म अन्तर) का कारण होते हैं (**सांख्य ५.९४ - न तत्त्वान्तरं सादृश्यं प्रत्यक्षोपलब्धेः**)। उसी प्रकार, सृष्टि में जहाँ भी कोई सूक्ष्म पदार्थ है तो उसमें - उस द्वितीय स्तर की रचना में - मूल कारण प्रकृति और ईश्वर का उसमें विशेष हेतु से सान्निध्य - इस संयोग का (प्रथम स्तर की रचना का) अन्तर्भाव है।

महर्षि दयानन्द ने ऋग्वेद १/१६३/४ के भाष्य में भी अग्न्यादि के तीन रूप को इन तीन स्तरों पर बताया है–

त्रीणि त आहुर्दिवि बन्धनानि त्रीण्यप्सु त्रीण्यन्तः समुद्रे ।
उतेव मे वरुणश्छन्त्स्यर्वन्यत्रा त आहुः परमं जनित्रम् ॥

भावार्थ–"जैसे अग्नि के कारण, सूक्ष्म और स्थूल रूप हैं, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी के भी हैं, वैसे सब उत्पन्न हुए पदार्थों के तीन स्वरूप हैं। हे विद्वान्! जैसे तुम्हारा विद्या जन्म उत्तम है, वैसा मेरा भी हो।

अगली पंक्तियों में सृष्टि रचना के तीन स्तर के क्रम को हम दो प्रसंगों में समझेंगे – गति और ऊर्जा।

(१) गति–ईश्वर प्रधान में गति ऐसे उत्पन्न करता है जैसे एक चुम्बक अपने निकट पड़ी लोहे की कील में गति उत्पन्न करती है (**सांख्य १.९६ - तत्संनिधानादधिष्ठातृत्वं मणिवत्**)। ईश्वर की इस सामर्थ्य से उसका एक नाम प्राण भी है। **अथर्ववेद ११.४.१** –

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे ।
यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्त्सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥

जिसमें बताया है कि समग्र जगत् का आदि निमित्त कारण प्राण ईश्वर है। प्राण/ईश्वर द्वारा मूल प्रकृति में एक विशेष प्रकार का क्षोभ उत्पन्न करने से गति का जन्म होता है। इस प्रकार ईश्वर ने प्रथम स्तर पर गति को जन्म दिया। अब इस गति का प्रवाह सूक्ष्म जगत् में होता है जिसका माध्यम वायु कहलाता है – ध्यान रखने की बात है कि यहां प्रयुक्त 'वायु' पद पञ्चभूत का वायु नहीं है बल्कि एक सूक्ष्म तत्त्व है, जिसे महर्षि दयानन्द ने स्थान-स्थान पर 'सूत्रात्मा वायु' लिखा है–यथा, ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के सृष्टिविद्याविषयः अध्याय में यजु. ३१.१५ की व्याख्या में लिखते हैं ". **..सातमा सूत्रात्मा वायु...**"। इस प्रकार, ईश्वर द्वितीय स्तर पर गति का प्रवाह करता है जिसके परिणामस्वरूप हमारी बुद्धि बुद्धीन्द्रियों/ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्राप्त ज्ञान के अनुरूप तदाकार हो जाती है – यह गतिविधि (इन्द्रियवृत्ति का बुद्धिवृत्ति बनना) सूक्ष्म जगत् में है। सूक्ष्म जगत् में सूत्रात्मा वायु द्वारा हमारे सूक्ष्म शरीर में गति उत्पन्न होती है; इसका वर्णन करते हुए सांख्य २.३१ (**सामान्यकरणवृत्तिः प्राणाद्या वायवः पञ्च**) में बताया है कि जीव के बुद्धि आदि सूक्ष्म शरीर के अंग अपने क्रियाकलाप कर पाते हैं क्योंकि प्राण का उन्हें आधार मिलता है और प्राण की करणवृत्ति पांच वायुओं द्वारा सम्भव होती है। स्पष्ट है कि सूक्ष्म शरीर में गतिविधि सूक्ष्म वायुतत्त्व द्वारा होती है जिसे महर्षि 'सूत्रात्मा वायु' कहते हैं; वहाँ पञ्चभूत का वायु विद्यमान नहीं है। पुनः आत्मा/पुरुष बुद्धि, अहंकार, मनस् और ५ कर्मेन्द्रियों से बाह्य स्थूल जगत् के पदार्थों में गति उत्पन्न कर पाता है। इसके अतिरिक्त सृष्टि में सर्वत्र गति देखी जाती है कि पृथ्वी सूर्य की परिक्रमा करती है; स्थूल जल और वायु में भी गति है। इस प्रकार, गति के प्रसंग में तीन स्तर बनते हैं – मूल कारण प्रकृति में प्राण द्वारा, सूक्ष्म जगत् में सूत्रात्मा वायु के माध्यम से, और बाह्य/स्थूल जगत् में अणु से ले कर ग्रह-नक्षत्र में।

स्मरण रखना चाहिये कि जहाँ भी तृतीय स्तर की गति है तो द्वितीय और प्रथम स्तर की गतियों का वहाँ अन्तर्भाव होगा। जैसे, एक मनुष्य ने एक गिलास एक स्थान से उठा कर दूसरे स्थान पर रख दिया। गिलास में तृतीय स्तर की गति उत्पन्न की गयी जिसका कारण उस मनुष्य के सूक्ष्म शरीर की गति है। उसके सूक्ष्म शरीर के तत्त्वों में गति ईश्वर प्राण बन कर करता है जो प्रथम स्तर की गति है – (**सांख्य १.९७ विशेषकार्येष्वपि जीवानाम्**)। उसी प्रकार, यह भी समझना होगा कि

जहाँ द्वितीय स्तर की गति है वहाँ प्रथम स्तर की गति का अन्तर्भाव होगा।

(२) **ऊर्जा**–पञ्चभूत के तत्त्वों से पृथ्वी (दृश्य जगत्) के पदार्थ बनते हैं जिनमें काष्ठ की अग्नि भी सम्मिलित है। काष्ठ ने अग्नि सूर्य से प्राप्त की। चन्द्रमा भी सूर्य से प्राप्त प्रकाश को परावर्तित कर प्रकाशित होता है। इस दृष्टि से काष्ठ और चन्द्रमा एक समान पृथ्वी-स्थानीय हैं। इन्हें ऊर्जा सूर्य से प्राप्त होती है जो स्वप्रकाशस्वरूप है; वह ईश्वर के सूर्यत्व का पिण्डरूप है कि ईश्वर जगत् को भौतिक प्रकाश/ऊर्जा दे सके। इस प्रकार, ऊर्जा के तीन स्तर हैं :–

(क) प्रथम स्तर पर ईश्वर मूल प्रकृति में ऊर्जा संप्रेषित करता है जब वह विद्युत् कहलाता है (यजु० २३.५३-५४, भावार्थ–हे मनुष्यो! जो अतिसूक्ष्म विद्युत् है सो प्रथम परिणाम, महतत्त्वरूप द्वितीय परिणाम...), जैसे गति के प्रसंग में वह प्राण कहलाता है। ईश्वर में सूर्यत्व है और वह सर्वव्यापक है। किन्तु सूर्य सर्वत्र नहीं है; सूर्य वहीं है जहां ईश्वर ने अपने सूर्यत्व को पिण्ड में संयोजित किया– (सांख्य ३.१३–मूर्तत्वेऽपि न संघातयोगात्तरणिवत्)। ईश्वर की सूर्य को बनाने की क्रिया को प्रथम स्तर की सृष्टिरचना कहेंगे जब वह विद्युत् कहलाता है।

(ख) सूक्ष्म जगत् में इस ऊर्जा का संवहन सूत्रात्मा वायु द्वारा होता है जो अन्तरिक्ष में है, और सूर्य की ऊर्जा को पृथ्वी पर लाता है।

(ग) सूर्य की ऊर्जा से पृथ्वी को ऊर्जा प्राप्त होती है जो तृतीय स्तर की है, जैसे काष्ठ को अग्नि प्राप्त होती है। काष्ठ की अग्नि पृथ्वी-स्थानीय अग्नि है जिसमें ऊर्जा तृतीय स्तर पर है; वैसे ही कोयला, तेल, आदि स्थूल पदार्थों में है।

इस प्रकार, ऊर्जा के संवहन के प्रसंग में तीन स्तर बनते हैं–विद्युत्, सूक्ष्म जगत् में अन्तरिक्ष का सूत्रात्मा वायु, बाह्य स्थूल जगत् में जैसे काष्ठ में छिपी हुई अग्नि। इस छिपी हुई विद्युत्रूप अग्नि के दो रूप हैं – कार्यभूत और कारणभूत – क्रमशः सूक्ष्म जगत् और कारण जगत् (द्रष्टव्य ऋषि दयानन्दकृत ऋग्वेद १/९३/६ के वेदभाष्य का भावार्थ)। **ऋग्वेद ३/२८/६–अग्ने वृधान आहुति पुरोळाशं जातवेदः। जुषस्व तिरोअह्न्यम्**। ऋषि दयानन्द इस मन्त्र के भाष्य में लिखते हैं–"जैसे बिजुली सब स्थानों में व्याप्त होकर सम्पूर्ण मूर्तिमान् पदार्थों का सेवन करती है वा प्रसिद्ध हुई बढ़ती है, वैसे ही विद्याओं में व्यापक विद्वान् जन धर्म की सेवा करते हुए वृद्धि को प्राप्त होते हैं।" कहने का आशय है कि जैसे छिपी हुई बिजुली पदार्थ के प्रति तद्रूप होती है और घर्षण आदि क्रिया से प्रसिद्ध होती है, वैसे ही उपासना किया हुआ विद्युत् रूप ईश्वर भी अग्नि रुपी विद्या और धर्म के दान से विद्वानों की उन्नति करता है। यहाँ विद्युत् शब्द ईश्वर के लिए भी प्रयुक्त है।

निरुक्त ७.२ में पठित है–**तिस्र एव देवता इति नैरुक्ताः। अग्निः पृथिवीस्थानः। वायुर्वेन्द्रो वा अंतरिक्षस्थानः। सूर्यो द्युस्थानः**। अर्थात् तीन ही देवता हैं, यह नैरुक्त मानते हैं। अग्नि पृथिवी स्थान वाला। वायु वा इन्द्र अन्तरिक्ष स्थान वाला। सूर्य द्युस्थान वाला। जो विगत बताये क्रम से द्युस्थानीय सूर्य, अन्तरिक्षस्थानीय वायु वा इन्द्र, और पृथिवीस्थानीय अग्नि है, जैसा आगे चित्र में दिखाया गया है। कोई कह सकता है कि सूर्य तो स्थूल पदार्थ है तो इसे तृतीय स्तर पर रखा जाना चाहिये था। किन्तु, सूर्य में द्वितीय और प्रथम स्तर के विद्युत् का अन्तर्भाव होने से सूर्य को प्रथम स्तर पर रखा गया है; स्वप्रकाशस्वरूप होने से उसे द्युस्थानीय कहा है। सूर्य को यहाँ द्युस्थानीय बताया है कि ईश्वर (=विद्युत्) ही सूर्य में समाहित है, जिसके प्रकाश से पृथ्वी की काष्ठ में अग्नि इकट्ठा

होती है जो पृथिवीस्थानीय है। सूर्य से प्रकाश/ऊर्जा पृथ्वी पर कैसे पहुँचता है – यह रहस्य है क्योंकि अन्तरिक्ष में पोल है, पञ्चभूत का वायु नहीं है। इसे निरुक्तकार ने 'अन्तरिक्ष स्थानीय वायु' कहा है जो सूक्ष्म तत्त्व है, जिसे ऋषि दयानन्द ने 'सूत्रात्मा वायु' कहा है। पूर्व लिखा जा चुका है कि सांख्य २.३१ में–सूत्रात्मा वायु के बल पर सूक्ष्म शरीर के १३ करण कार्य करते हैं। सूक्ष्म जगत् में पञ्चभूत के तत्त्वों का अस्तित्व नहीं हो सकता है जैसे अन्तरिक्ष में वायुमण्डल वाले वायु का अस्तित्व सम्भव नहीं है। इस प्रकार, ऊर्जा के संवहन के प्रसङ्ग में तीन स्तर बनते हैं – विद्युत्/सूर्य, सूक्ष्म जगत् में अन्तरिक्ष का सूत्रात्मा वायु, बाह्य स्थूल जगत् में जैसे काष्ठ में छिपी हुई अग्नि।

अतः प्राण, विद्युत्, इत्यादि भी तीन आयामों में काम करते हैं। मुख्य बात समझने की है कि प्रथम आयाम में ईश्वर मूल प्रकृति में एक प्रकार से क्षोभ उत्पन्न करता है – यह उसकी प्रथम आयाम में सृष्टि रचना है। इस क्षोभ से सूक्ष्म जगत् में पञ्च सूक्ष्मभूत की सृष्टि रचना होती है जो द्वितीय स्तर की है। द्वितीय स्तर की सृष्टि रचना से स्थूल जगत् की तृतीय स्तर की सृष्टि रचना होती है जो पञ्चभूत के अणु से होती है।

अप्रैल २०२४ के 'दयानन्द सन्देश' मासिक पत्र में "वेदों में दी गई तीन अग्नियाँ" शीर्षक से लेख प्रकाशित हुआ है। लेखिका को निरुक्त के वचन के अन्तरिक्ष स्थानीय वायु पद के स्थान पर विद्युत् नहीं लिखना चाहिए था। वायु (सूत्रात्मा वायु) के सूक्ष्म जगत् में अस्तित्व से किसी को आश्चर्य नहीं होना चाहिए क्योंकि हम आकाश के इस प्रकार के बहु आयामी अस्तित्व से परिचित हैं। आकाश पञ्चभूत में गिना जाता है; आकाश का अस्तित्व सूक्ष्म जगत् में भी है। अपितु 'आकाश' पद का उपयोग मूल प्रकृति के लिए भी होता है। इसी प्रकार वायु पद के द्विआयामी अर्थ हैं–सूक्ष्म जगत् में सूत्रात्मा वायु और बाह्य/स्थूल जगत् में पञ्चभूत का वायु जो वायुमण्डल में है। हम ऋग्वेद १/१६३/४ का ऋषि का भावार्थ देख चुके हैं–"जैसे अग्नि के कारण, सूक्ष्म और स्थूल रूप हैं, वायु, अग्नि, जल और पृथिवी के भी हैं, वैसे सब उत्पन्न हुए पदार्थों के तीन स्वरूप हैं।" निरुक्त के वचन में अन्तरिक्ष स्थानीय वायु (द्वितीय स्तर की रचना) में विद्युत् (प्रथम स्तर की रचना) का अन्तर्भाव है किन्तु वायु के स्थान पर विद्युत् पद का प्रयोग करना गलत है। ❑❑

ईश्वर सर्वशक्तिमान् है

–पंडित सत्यानन्द वेदवागीश

- **"ईश्वर सर्वशक्तिमान् है" का वास्तविक तात्पर्य**
- **बुद्धि का एक गुण–ऊहापोह (सिद्धांत रक्षा-वाद-विवाद)**
- **ऊहा द्वारा सिद्धान्त को समझाने और उसकी रक्षा करने का चमत्कार !**

घटना भारत के स्वतन्त्र होने से पूर्व की है। पेशावर–आर्यसमाज का वार्षिकोत्सव था। एक दिन रात्रि के अधिवेशन में पं० बुद्धदेव जी विद्यालंकार का 'ईश्वर' विषय पर व्याख्यान था। उस समय अध्यक्षता कर रहे थे वहाँ के डिप्टी कमिश्नर, जो थे तो मुसलमान पर सुपठित होने के कारण उदार विचारों के थे।

पण्डित जी ने व्याख्यान में ईश्वर के गुणों का वर्णन करते हुए 'सर्वशक्तिमान्' का अर्थ बताया–"सर्वशक्तिमान् का यही अर्थ है कि ईश्वर अपने कर्म करने में पूर्ण रूप से समर्थ है। अपने कर्मों के करने में वह किसी अन्य की सहायता नहीं लेता है। सृष्टि की रचना करना, सृष्टि का पालन करना, उसका संहार (प्रलय) करना और जीवों के कर्मों का निरीक्षण तथा तदनुसार फलप्रदान करना–ये जो ईश्वर के कर्म हैं, उनके करने में वह सम्पूर्ण शक्ति से युक्त है–सर्वशक्तिमान् है। किन्तु 'सर्वशक्तिमान्' का यह अर्थ कदापि नहीं है, कि वह जो चाहे सो कर दे। बिना किसी सामग्री के कुछ बना दे। उसके भी कुछ नियम हैं। उनके अनुसार ही वह कार्य करता है, उनके विपरीत नहीं। कभी वह ऊटपटांग काम नहीं करता है।"

ध्यान से सुन रहे डि० कमिश्नर ने अनुभव किया कि पण्डित जी के इस प्रवचन से तो कुरान के "सृष्टि से पहले खुदा के सिवाय कुछ नहीं था। खुदा ने 'कुन' (हो जा) कहा और नेश्त में से अश्त हो गया = नास्ति में से अस्तित्व हो गया = अभाव में से भाव हो गया"–इस सिद्धान्त का खण्डन हो रहा है। अतः बीच में ही बोले–"पण्डित साहब ! खुदा तो वही हो सकता है, जो जैसा चाहे सो कर सके। खुदा पर भी कोई नियम लागू हो तो वह खुदा ही क्या?"

पण्डित जी ने समझाने का प्रयास करते हुए कहा–"ईश्वर भी नियमानुसार व्यवस्थानुसार कार्य करता है। वह असम्भव कार्य नहीं करता।"

डि० कमिश्नर–"हाँ, ईश्वर असम्भव को भी सम्भव कर सकता है, वह सब कुछ कर सकता है"।

पण्डित जी–"क्या खुदा अपने आप को मार सकता है? क्या वह अपने आपको दुराचारी, पापी, मलिन बना सकता है? या फिर क्या वह ऐसा कोई पत्थर बना सकता है, जिसे वह स्वयं न उठा सके ?"

डि० कमिश्नर–"पण्डित जी, ये तो बेसिर पैर की बातें हैं। खुदा वास्तव में सब कुछ कर सकता है।"

तुरन्त पण्डित जी की ऊहा-प्रतिभा जागृत हुई। उन्होंने पूछा–"अच्छा, कमिश्नर साहब ! खुदा का वजूद (अस्तित्व) कहाँ तक है?"

डि० कमिश्नर–"उसका वजूद सब जगह है, वह हरजाँ मौजूद है, कोई जगह उसके बिना नहीं है।"

(शेष पृष्ठ २७ पर)

श्रीकृष्ण की कितनी पत्नियाँ थी?

लेखक–डॉ० भवानीलाल भारतीय

कल एक लेख पढ़ा जिसमें श्रीकृष्ण की १६१०८ पत्नियों के बारे में लिखा गया था, प्राय: विधर्मी लोग हिन्दुओं के सामने कई बार श्रीकृष्ण के विवाह के बारे में शंका करते हैं और पुराणों को मानने वाले हिन्दू भी श्रीकृष्ण को बहु-पत्नियों के स्वामी मानते हैं, तो क्या कृष्ण ने १६१०८ विवाह किये थे ? क्या पुराणों ने श्रीकृष्ण का सही चरित्र चित्रण किया है? इस तरह के कई प्रश्न मन में कई बार आते हैं। पाठक इस लेख को एक बार अवश्य पढ़ें और आत्मचिन्तन करें कि– "कृष्ण क्या थे और क्या बना दिए गए",

धर्मराज युधिष्ठिर के मन में जब राजसूय यज्ञ करने की इच्छा उत्पन्न हुई तो उन्होंने अपने शुभचिन्तकों तथा मित्रों से इस विषय में परामर्श किया। सबने एकमत होकर अपनी सहमति प्रकट की और युधिष्ठिर को राजसूय यज्ञ का उपयुक्त अधिकारी घोषित किया, परन्तु युधिष्ठिर को तब तक संतोष नहीं हुआ जब तक उन्होंने कृष्ण से एतद्विषयक परामर्श नहीं कर लिया। युधिष्ठिर का आदेश पाकर वे द्वारिका से चल पड़े और इन्द्रप्रस्थ आकर उन्होंने उनसे भेंट की।

युधिष्ठिर बोले, "मैंने राजसूय यज्ञ करने की इच्छा प्रकट की है, किन्तु केवल इच्छा करने-मात्र से ही यह कार्य पूरा नहीं हो सकता, यह तुम जानते हो। मेरे मित्र-वर्ग ने भी एकमत होकर राजसूय के सम्बन्ध में अपनी सम्मति दी है, परन्तु हे कृष्ण, उसकी कर्तव्यता के विषय में तुम्हारी बात ही प्रमाण है, क्योंकि कोई-कोई जन मित्रतावश किसी कार्य का दोष कह नहीं सकते, कोई-कोई स्वार्थवश केवल स्वामी का प्रिय विषय ही कहते हैं, और कोई-कोई अपने लिए जो प्रिय होता है उसी को कर्तव्य मान लेते हैं। परन्तु तुम काम-क्रोध के वश में नहीं हो, अत: लोक में जो हितकारी है, वही सत्य कहो।" सभापर्व, १३।४६-५१

युधिष्ठिर के इस कथन से जाना जाता है कि वह कृष्ण को आप्तपुरुष मानते थे और उनके कथन को यथार्थ, हितकर तथा प्रामाणिक समझते थे। इससे पूर्व उसने मंत्रिपरिषद्, अपने भ्रातृवर्ग और धौम्य, द्वैपायन आदि ऋषियों से राजसूय-विषयक परामर्श कर लिया था, परन्तु उसने अन्तिम रूप में कृष्ण की सम्मति को ही महत्त्व देना उचित समझा। युधिष्ठिर के इस कथन से कृष्ण के चरित्र की महानता पर भी अच्छा प्रकाश पड़ता है। वह उन्हें काम और क्रोध से रहित पुरुषोत्तम समझते हैं।

बंकिमचंद्र जी ने इस प्रसंग में ठीक ही लिखा है–

"नित्य का चाल-चलन देखनेवाले कृष्ण के फुफेरे भाई कृष्ण को क्या समझते थे और हम उन्हें क्या समझते हैं ? वे लोग कृष्ण को काम, क्रोध से विवर्जित, सबसे सत्यवादी, सब दोषों से रहित, सर्वलोकोत्तम, सर्वज्ञ और सर्वकृत समझते थे, और हम उन्हें लम्पट, माखन-चोर, कुचक्री, मिथ्यावादी, कापुरुष और सब दोषों की खान समझते हैं। प्राचीन ग्रंथों में जिसे धर्म का आदर्श माना है उसे जाति ने इतना नीचे गिरा दिया, उस जाति का धर्म लोप हो जाय तो आश्चर्य ही क्या?" कृष्णचरित्र, पृ० २६३

पाठक ध्यान देवें, यह लेख डॉ० भवानीलाल भारतीय जी की पुस्तक "श्री कृष्ण चरित्र" के दो अध्याय (रुक्मिणी-परिणय व बहुविवाह का आरोप

और उसकी असत्यता) को जोड़ कर बनाया जा रहा है। ताकि आप योगेश्वर कृष्ण की विवाह के बारे उठ रही शंकाओ का समाधान आसानी से प्राप्त कर पाए। आप इस पुस्तक को पढ़ कर योगेश्वर कृष्ण के बारे में और भी शंकाओं का समाधान पा सकते हैं–'अवत्सार'

रुक्मिणी–

पुराण-लेखकों ने श्री कृष्ण पर बहुविवाह के जो मिथ्या आरोप लगाये हैं वे सब कपोल-कल्पित हैं। वस्तुतः रुक्मिणी ही कृष्ण की एकमात्र विवाहिता पत्नी थी। यह विदर्भराज भीष्मक की पुत्री थी। 'भागवत' में लिखा है कि राजा भीष्मक भी अपनी पुत्री का विवाह श्री कृष्ण के ही साथ करना चाहते थे, परन्तु उनके पुत्र रुक्मी की इसमें सम्मति नहीं थी। वह चेदिराज दमघोष के पुत्र शिशुपाल के साथ रुक्मिणी का विवाह करना चाहता था। (भागवत १०, अध्याय ५२) अन्त में पुत्र की इच्छा की ही विजय हुई और शिशुपाल के साथ रुक्मिणी के विवाह का निश्चय हो गया।

रुक्मिणी स्वय कृष्ण के अपूर्व रूप एवं गुणों की चर्चा सुन चुकी थी। उसे यह समाचार सुनकर बड़ा खेद हुआ कि उसका विवाह उसकी इच्छा के प्रतिकूल हो रहा है। उसने एक वृद्ध ब्राह्मण द्वारा अपना प्रणय-संदेश श्री कृष्ण के पास द्वारिका भेजा। रुक्मिणी के सन्देश का अभिप्राय यह था कि अमुक दिन शिशुपाल मेरा परिणय करने के लिए आयगा परन्तु मैंने तो अपने को आपके प्रति समर्पित कर दिया है। आप मेरे उद्धारार्थ आयें, मैं नगर के बाहर निश्चित समय पर आपकी प्रतीक्षा करूंगी।

रुक्मिणी का उपर्युक्त संदेश पाकर कृष्ण बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने अपने सारथी को रथ तैयार करने और विदर्भ की राजधानी कुण्डिनपुर चलने का आदेश दिया। नियत समय पर रथारूढ़ होकर उन्होंने विदर्भ की ओर प्रस्थान किया। उधर शिशुपाल को भी यह समाचार मिल गया कि कृष्ण रुक्मिणी-हरण का प्रयत्न अवश्य करेंगे। इसलिये वह भी विवाह के अवसर पर अपने मित्र राजाओं को सेना-सहित लेकर कुण्डिनपुर पहुँचा। नियत समय पर रुक्मिणी नगर के बाहर उद्यान में भ्रमणार्थ आई और वहाँ पहले से ही उपस्थित कृष्ण ने उसके द्वारा दिये संकेत को समझकर उसे अपने रथ पर बिठाया और द्वारिका के लिए प्रस्थान किया। रुक्मिणी को इस प्रकार आसानी से कृष्ण के द्वारा अपहृत होता देखकर शिशुपाल के क्रोध का पार न रहा। उसने कृष्ण पर आक्रमण किया, किन्तु बलराम अपने यादव-दल के साथ कृष्ण की सहायता हेतु वहाँ पर उपस्थित थे। उन्होंने शिशुपाल की सेना को मार भगाया। जब रुक्मिणी के हरण का समाचार रुक्मी को मिला तो उसने श्री कृष्ण का पीछा किया, किन्तु वह कृष्ण के हाथों परास्त हुआ और कृष्ण ने दण्ड स्वरूप अपने शस्त्र से उसके सिर का मुण्डन कर उसे विरूप कर दिया। अन्त में रुक्मिणी और बलराम के कहने से वे अपने साले को छोड़ देने पर राजी हुए। इस प्रकार विरोधी को पराजित कर वे सकुशल द्वारिका पहुँचे। वहाँ वैदिक विधि से उन्होंने रुक्मिणी का पाणिग्रहण किया। (भागवत, दशम स्कन्ध, उत्तरा), अध्याय ५२, ५३, ५४)

'मनुस्मृति' में वर्णित आठ प्रकार के विवाहों में एक प्रकार राक्षस विवाह का भी है। (अध्याय ६।२१) इसके अनुसार कन्या का बलात् हरण कर उससे विवाह किया जाता है। उक्त स्मृति ने राक्षस-विवाह को क्षत्रियों के लिए प्रशस्त बताया है। इस विवाह के अच्छे-बुरे दोनों पहलू हैं। यदि कन्या की इच्छा के प्रतिकूल उसका अपहरण किया जाता है तब तो यह स्पष्ट ही अधर्म-कृत्य है। परन्तु एक परिस्थिति ऐसी आ सकती है जबकि कन्या तो वर को पसन्द करे किन्तु उसके माता-पिता की सम्मति उसे इच्छुक वर के साथ

ब्याह देने की नहीं होती। ऐसी स्थिति में प्राचीन काल में कन्या-हरण के अतिरिक्त और कोई मार्ग नहीं रहता था। अत:, यह कहना कि राक्षस-विवाह निश्चित रूप से अन्यायपूर्ण, अत्याचारयुक्त अथवा बलात्कार का प्रतीक है, अनुचित होगा। यहाँ रुक्मिणी-हरण के प्रसंग में भी जो कुछ घटनायें घटीं, वे रुक्मिणी की इच्छा के अनुकूल ही थीं। कृष्ण के साथ सम्बन्ध होने से रुक्मिणी को प्रसन्नता ही हुई क्योंकि रूप, गुण और योग्यता की दृष्टि से कृष्ण ही उसके अनुकूल पति हो सकते थे। आज चाहे राक्षस विवाह का विधान विद्यमान सामाजिक मूल्यों की दृष्टि से कितना ही अनुचित अथवा आपत्तिजनक क्यों न दीख पड़े, परन्तु कृष्ण के युग में परिस्थितियाँ भिन्न थीं। उस युग में राक्षस-विवाह को अनुचित नहीं माना जाता था, अत: तत्कालीन आचार-शास्त्र के मापदण्डों से ही हमें रुक्मिणी-हरण की घटना की आलोचना करनी चाहिए। जब हम 'महाभारत'-युग की सामाजिक मान्यताओं के आधार पर इस घटना की समीक्षा करते हैं तब हमें उसमें कुछ भी अनौचित्य नहीं दीखता।

महाभारतोक्त शिशुपाल-वध प्रकरण में भी इस घटना की चर्चा हुई है। श्री कृष्ण कहते हैं-

रुक्मिण्यमस्य मूढस्य प्रार्थनासोन्मुमूर्षत:।
न च तां प्राप्तवान् मूढ: शूद्रो वेद श्रुतीमिव॥

(सभापर्व, ४५।१५)

(क्रमश:) प्रस्तुति-'अवत्सार'

❑❑

(पृष्ठ २४ का शेष) **ईश्वर सर्वशक्तिमान् है !**

पण्डित जी-"क्या वह हिन्दुस्तान से या एशिया से बाहर भी है?"

डि० कमिश्नर-"पण्डित साहब ! आप कैसी मखौल की बात कर रहे हैं ! आप भी तो ईश्वर को सर्वव्यापक मानते हैं। वास्तव में खुदा संसार में सब जगह है। दूर से दूर तक है। He is omnipresent."

पण्डित जी-"कहीं तो खुदा के वजूद की सीमा होगी ?"

डि० कमिश्नर-"नहीं, उसकी कोई हदो हदूद (सीमा) नहीं हैं। वह असीम है, अनन्त है-He is infinite."

इस प्रकार ईश्वर की अनन्तता- सर्वव्यापकता को स्वीकार करवा के पण्डित जी ने प्रसङ्ग बदलते हुए पूछा-"कमिश्नर साहब ! यदि मैं इस समय ऐसा व्याख्यान दे दूँ, जिससे साम्प्रदायिक दंगा भड़कने की आशंका हो जाय, तो आप क्या करेंगे?"

डि० कमिश्नर (हंसते हुए)- "ऐसा करने पर मैं आपको तुरन्त पेशावर जिले की सीमा से बाहर निकलवा दूंगा।"

अब पण्डित जी की बारी थी - "कमिश्नर साहब ! आप तो मुझे अपनी (अपने जिले की) सीमा से बाहर निकाल सकते हैं, पर क्या खुदा अपनी सीमा से मुझे बाहर निकाल सकता है, चाहे मैं कितना ही पाप करूँ? और यदि नहीं, तो यह कैसे कि वह सब कुछ कर सकता है ?"

डि० कमिश्नर विचारवान् व्यक्ति थे। तुरन्त समझ गये कि जब खुदा की कोई सीमा ही नहीं है, तो वह किसी को अपनी सीमा से बाहर कैसे निकाल सकता है? अत: प्रसन्न होकर पण्डित जी को उत्तम तर्क द्वारा ईश्वर की अनन्तता और सर्वशक्तिमत्ता समझाने का धन्यवाद दिया।

यह है ऊहा द्वारा सिद्धान्त को समझाने और उसकी रक्षा करने का चमत्कार !

[स्रोत : बुद्धि निधि:, पृष्ठ 36-37, प्रथम संस्करण, वि०सं० 2055, प्रस्तुतकर्ता : भावेश मेरजा]

❑❑

आर. एन. आई. नं० १६३३०/६७
Post in Delhi R.M.S.
०५-११/११/२०२४
भार ४० ग्राम

नवम्बर २०२४

रजिस्टर्ड नॉ DL (DG -11)/8029/2024-26
लाईसेन्स नॉ यू (डीॉएनॉ) १४४/२०२४-२६
Licenced to post without prepayment
Licence No. U (DN) 144/2024-26

पाठकों से निवेदन

१. अपने पत्रें में अपनी ग्राहक संख्या अवश्य ही लिखा करें, अन्यथा कार्यवाही सम्भव नहीं होगी।
२. १५ तारीख तक प्रतीक्षा करके ही दुबारा अंक मँगाएँ, यदि अंक न पहुँचा हो।
३. यदि आप अपना पता बदलवायें तो यह ध्यान रखें कि बदले हुए पते पर अंक-प्रेषण एक माह बाद आरम्भ होगा।
४. अंक के रेपर पर अपना पता चैक कर लिया करें। यदि कोई त्रुटि हो, तो सूचना दे दिया करें।
५. जिन ग्राहकों का शुल्क समाप्त है, अविलम्ब भेजने की कृपा करें।

-दिनेश कुमार शास्त्री
कार्यालय व्यवस्थापक
मो०-९६५०५२२७७८

भारत में फैले सम्प्रदायों की निष्पक्ष एवं तार्किक समीक्षा के लिए
उत्तम कागज, मनमोहक जिल्द एवं सुन्दर आकर्षण मुद्रण
(द्वितीय संस्करण से मिलान कर शुद्ध प्रामाणिक संस्करण)

सत्य के प्रचारार्थ — सत्यार्थ प्रकाश — सत्य के प्रचारार्थ

प्रचार संस्करण (जिल्द) 23x36%16	मुद्रित मूल्य रु. 80/-	प्रचारार्थ रु. 60/-
विशेष संस्करण (जिल्द) 23x36%16	रु. 120/-	रु. 80/-
पॉकेट संस्करण	₹80	₹50
विशिष्ट पॉकेट संस्करण	₹150	₹100
स्थूलाक्षर (जिल्द) 20x30%8	₹200	₹120
उपहार संस्करण	₹1100	₹750
सत्यार्थ प्रकाश अंग्रेजी अजिल्द	रु. 250/-	रु. 160/-
सत्यार्थ प्रकाश अंग्रेजी सजिल्द	रु. 300/-	रु. 200/-

प्रचारार्थ मूल्य पर कोई कमीशन नहीं

कृपया एक बार सेवा का अवसर अवश्य दें और महर्षि दयानन्द जी की अनुपम कृति सत्यार्थ प्रकाश के प्रचार प्रसार में सहभागी बनें..

आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट
427, मन्दिर वाली गली, नया बांस, दिल्ली-6
Ph : 011-43781191, 09650522778
E-Mail : aspt.india@gmail.com

छपी पुस्तक/पत्रिका

श्री सेवा में.....
ग्राम.....
डा०.....
जिला.....

मुद्रक, प्रकाशक व सम्पादक धर्मपाल आर्य, स्वामित्व आर्ष साहित्य प्रचार ट्रस्ट, ४२७, गली मन्दिर वाली, नया बांस, खारी बावली, दिल्ली-११०००६ से प्रकाशित एवं तिलक प्रिंटिंग प्रेस, २०४६, बाजार सीता राम, दिल्ली-११०००६ से मुद्रित।